श्री शिवदेव उपाध्याय 'सतीश', बी० ए० बी० एल०

[सम्पादक मासिक 'विश्वमित्र']

प्रकाशक

साहित्य-सेवक-संघ

छपरा

प्रकाशक
ठाकुर अच्युतानन्दसिंह, 'अतरसनी'
साहित्य-सेवक संघ, छपरा।

प्रथम संस्करण, १९३८
मूल्य १॥)

मुद्रक
बजरंगबली 'विशारद'
श्रीसीताराम प्रेस, जालिपादेवी, काशी।

समर्पण

इसी कहानी को

श्रीमती नीलम कुमारी को

लेखक की भेंट

एक बात

यह नन्ही सी पुस्तक आपके सामने है। काफी पहले, १९३४ में, अपने कालेज के दिनो में इसे यों ही लिख डाली थी। इसमें लेखक का कोई खास सन्देश—कोई खास विचार रखने का कोई उद्देश्य नहीं, सिर्फ प्राणनाथ, प्रभाशङ्कर, केसर देवी और नीलम कुमारी के कुछ 'टाइप' जो मानव जाति में हैं, इस पुस्तक में है। और अपनी कहानी के साथ वे अपने विचार कह जाते हैं।

और लेखक न किसी से सहमत है, न असहमत। उसने उनके साथ उनकी बातें रख दीं और उनके विचार अगर गलत आधारों पर है, तो उनके लिये वे जिम्मेदार हैं। लेखक ने उन्हें केवल रख दिया है—ज्यों का त्यों, बिना किसी घटाव-बढ़ाव, बिना किसी सहानुभूति या उपेक्षा के।

उनकी अक्षमता और सक्षमता के अनुपात में स्वतः उन्हें निन्दा या प्रशंसा मिल जायगी। यही वे 'डिज़र्व' करते है और यही वे चाहेंगे भी।

—लेखक

एक मूल

ऋषि-पत्तन,

सोमवार

१२ बजे दिन

.............!

'धक' हो गयी !......मृत्यु की तरह शान्त, किन्तु मृत्यु की विकल कल्पना की भाँति भयावह इस लम्बी और नीरव अवधि के बाद आज और अभी-अभी आपका एक पत्र मिला है। मिज़राब की चोट खाये हुए तार की तरह प्राण बज उठे ! जैसे मुझे कोई मेरी कब्र में जगा रहा हो। आह ! क्या कहूँ, पत्र पाते ही सारी नसों में एक लहर दौड़ गयी। सारा जीवन एक सिहर से भर गया ! मैं स्थिर न रह सकी, जैसे किसी ने किनारे से उठाकर चञ्चल लहरियों पर फेंक दिया हो। उठी और कमरे में जाकर सारे दरवाजों को बन्दकर, खिड़की की राह से आ रही सूरज की किरणों के प्रकाश मे पढ़ने लगी, सचमुच-सचमुच यह तुम्हारा ही पत्र है। लेकिन हाय ! 'कमरे के इस घोर अंधकार

में तुम्हारे इस पत्र के एक-एक शब्द एक-एक नयी विभीषिका की तरह मुझे घेर लेते हैं ! आधी रात मे कब्र से अनायास ही उठनेवाली भर्रायी हुई आवाज़ की तरह ये शब्द मेरे प्राणों मे भय उत्पन्न कर देते है !

"कौन जानता था," तुम लिखते हो, "कौन जानता था केसर रानी, कि हमारी उन मधुभरी रातों के बाद, प्रभात—एक ऐसा प्रभात आ जायगा जिसमें—जिसके बाद, हम प्रकाश के दर्शन ही न कर सकेंगे।······रातें, वे मधुभरी रातें—हाय ! उनका कितना निर्दय अन्त हो गया ! मै भूला नहीं हूँ । जीवन का वह तरल विषाद नस-नस में वैसे ही भिदा हुआ है जैसे··, वे मधुभरी—वे मदिरा की राते तो बीत गयीं, पर उन रातों का अँधेरा न बीता—उन रातों का नशा आज भी—अभी भी आँखो में छाया हुआ है। ध्यान आया और आँखें चढ़ीं······! यह नशा तो है मेरी रानी ! किन्तु वह मद-भरी रातें कहाँ चली गयीं······? उस मौन प्रारम्भ के इस हाहाकार भरे अन्त की कल्पना किसे थी······?

कल्पना ? इसकी कल्पना ??—इसकी कल्पना तुम्हे थी। तुमने······लेकिन जाने दो अब उन बातों की चर्चा भली नहीं मालूम होती। प्रेम के इतिहास के केवल प्रारम्भिक परिच्छेदों में अर्थ-हीन द्वन्द्वों का मजा है। उस समय निरर्थक प्रलापो का

भी एक अर्थ होता है, वैसा ही जैसा फूल को विकसित होते देखकर, उसमें पराग न होने पर भी भौरे पराग की आशा किया करते हैं। उनकी उस आशा का भी कुछ अर्थ होता है। वे प्रलाप भी अर्थ-हीन नहीं होते! लेकिन आज ?—उफ !······

"जीवन का वह उन्माद था मेरी रानी!" इसी पत्र में तुम फिर लिखते हो—"जीवन का वह उन्माद था जिसमें बहकर मैंने तुम्हें······" बस यहीं तक। इसके आगे नहीं लिख सकती। मैं करती तो हूँ इसे। किंतु लिखने को जी नहीं चाहता। तुमने निर्भय होकर इसे कर दिखाया और आज निस्संकोच होकर इसे लिख भी रहे हो; पर मैं········हाय! मैं अपनी लज्जा को क्या कहूँ! नववधू के घूँघट की तरह यह मुझे छिपाये हुए है।

'जीवन का वह उन्माद था मेरी रानी!' तुम लिखते हो, पर मैं तो कहती हूँ—जीवन का उन्माद यह है, मेरे स्वामी! उन्माद वह नहीं था, उन्माद यह है, जिसमें बहकर आज तुम मुझे········परंतु नहीं, अब इस उन्माद में बहने की न तो आवश्यकता ही है, न क्षमता ही! फिर भी, इस शांत, सोते पारावार में पत्थर का एक टीला फेंककर इसे उत्तेजित करने का मर्म क्या है? क्या है मेरे मालिक??

जीवन का सब कुछ डुबोकर अब आखिर है ही क्या, जिसे इस भीषण पारावार में तिनके की भाँति फेंक दूँ! अब तो

जी चाहता है, प्राणो का सारा बिखरा स्वर समेटकर पवन के एक कम्पन पर निछावर कर दूँ और तब—तब इस बात का अनुभव करूँ कि, इस पापी जीवन का कोई पृथक अस्तित्व नही है ! ये पापी प्राण अपना निजत्व खोकर किसी के प्राणों में एकाकार हो रहे हैं। अब तो सच कहती हूँ मेरे देवता! किसी तरह जीवन के उस पार उतर जाने की लालसा शेष है और इसी एक साध के पूरा होने तक कदाचित् इस कागजी नाव की रक्षा संसार के निर्मम झंझावात् के झकोरो से करनी पड़ेगी। यह जानते हुए भी कि, यह दुर्बल अस्तित्व अब अधिक दिनों तक दुनियाँ की लम्बी राह न नाप सकेगा, जब तुम प्रलोभन के टुकड़े फेंकते हो, तो मैं तुम्हारा मर्म नही समझ पाती और अपने मे ही उलझ जाती हूँ ! परंतु मुझे सबसे अधिक आश्चर्य तो तब होता है मेरे भगवान् ! जब मैं इनका मर्म न समझ पाने पर भी, इनमे उलझ जाने पर भी, और सबसे अधिक इन्हें ठुक-राने की प्रतिज्ञा करके भी, ठुकरा नहीं सकती, बल्कि जान बूझ कर इन्हें पागल-प्राणों से लपेट लेती हूँ ! भली-भाँति बाँध लेने पर भी अब यह प्रबल श्रृंखला क्यों फेंकते हो ममतामय ?··· हाय·······!!

तुमने अपने इस पत्र मे, एक युग के बाद जो प्यार भरकर प्राणों पर उँड़ेल दिया है, उसे अपने जीवन के समस्त अभिशापो

की शपथ, उसे अब मैं न पी सकूँगी……एक युग तक निरन्तर विषैले पारावार मे नहाते-नहाते अब इस जीवन में इतनी क्षमता कहाँ रह गयी है कि, वह अमृत के एक नन्हे प्याले को भी सूखे हुए मानस के भीतर उँड़ेल सके ! और फिर हृदय की इस उड़ती हुई बालुका-राशि के भीषण उत्ताप को इस नन्हे से प्याले की दो बूँदे शीतल कर सकेगी ? लेकिन अगर कर भी सकें……; ना, अब तो मैं इनकी कल्पना करके भी काँप उठती हूँ। हाय रे यह भाव ! ये मुझे कितने डरावने लगते है !

अधिक नही लिखा जाता। प्राणो में अब वह रस ही नहीं रहा, जिसे काग़ज़ो पर उँड़ेल सकूँ।

तुम्हारी ही
वही अभागिनी
—केसर

ऋषि-पत्तन

मंगलवार,

७ बजे की सन्ध्या

मेरे ज़िद्दी सुल्तान,

तुम्हारा एक पत्र—एक लम्बा—मेरे अभिशापो की अवधि से भी लम्बा-पत्र मुझे अभी-अभी संध्या की डाक से मिला है। उफ़! अब तुम यह क्या कर रहे हो? मुझे, मेरी शांत वासनाओं को तुम जगा रहे हो और वह भी आग की चिनगारियाँ फेंक कर!······· जीवन भर अभावो की आग में जल कर मैं राख हो चुकी हूँ, फिर यह चिनगारियाँ क्यो? इस मुट्ठी भर ठंडी राख को आग की चिनगारियों की आँच से दमकाया

जायगा ? कैसा भीषण प्रयत्न है मेरे मालिक ! मुझे—मेरे दुर्बल अस्तित्व को—सोने दो। मैं हाथ.....हे करुणा के अनन्त सागर, मैं हाथ जोड़ती हूँ।

गत सात वर्षों की लम्बी अभिशाप भरी अवधि के भीतर पापों—जीवन पर पापों का इतना बोझ लदता गया है कि, अब मैं प्यार का भार वहन न कर सकूँगी। प्यार और पाप दोनों दो वस्तुएँ हैं। फिर दोनों एक साथ और एक ही हृदय में...कैसी प्रवञ्चना है मायामय !—समुद्र का चन्द्रमा के लिये प्यार, दरिद्रों का अभिशाप के लिये प्यार, मुग्धाओं का मुसकान और भृकुटि-विलास के लिये प्यार और पतितों का पाप—काले पाप के लिये प्यार !!!.....तुम मुझे, तुम मुझे मेरे पापों को ही पालने दो ! हाय रे मेरे प्यारे प्यारे पाप !!!

"चाँदनी आती है। वसुधा पर दूध उँड़ेल जाती है, कण कण हँसते हैं, अपने भाग्य पर इतराते है। लेकिन मै ? मैं रोता हूँ—चाँदनी के इस खुले प्रकाश में, जब तारिकायें अपनी मुसकिराहट के साथ नाच-नाचकर छिपने लगती हैं, तो मैं रोता हूँ—मुझे संसार में कहीं छिपने की जगह क्यों न मिली ! हाय ! इस चाँदी के प्रकाश में मेरे सारे पाप स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं ! इससे तो वह काला अंधेरा ही अच्छा था, जो पाप की भांति सारी काया को लपेटे पड़ा था ! वहाँ भी यही चाँद.....यही चाँदनी और

यही उन्माद !! परन्तु क्या इतनी ही पीड़ा और इतनी ही······"
यह तुम्हारे शब्द हैं, लेकिन मैं इन्हें अपनी ओर से दुहराती हूँ।
जीवन की यह प्रतारणा ! मनोभावों के प्रति इतना विद्रोह !!
यह सब छोड़ दो मेरे बादशाह ! तुम अपने पर शासन करो।
आँधी के साथ उड़ने में मनोभाव का कल्याण नहीं होते देखा,···
लेकिन हरे ! हरे ! मैं तुम्हें उपदेश देने लगी ??

इस फटे चिथड़े में मैं अब फूल न सँभाल सकूँगी ! सात वर्षों, और पिछले सात वर्षों ही क्या विवाह के ६ मास बाद से ही—हाय रे यह लम्बी अवधि !—जिस अञ्चल में सिकता-कण बटोरती चली आयी हूँ, उसमें अब तुम फूलो की डलिया उभ-लना चाहते हो ! हाय ! मेरे नादान देवता ! तुम्हारी इस नादान कामना पर मैं हँसूँ या रोऊँ, मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता ! लेकिन स्वामी, अब तो समझने की इच्छा भी न रह गयी। जीवन के इसी अज्ञात भाव के उनींदे उन्माद मे किसी प्रकार प्राणों की टूटी हुई सम्बल-विहीन तरी पर मर-मिटकर दो डॉड़ लगा दिया करूँ—यही बहुत है। इसीलिये तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि, जीवन के इस धीमे प्रवाह के बीच जीवन की स्मृतियों को मत खड़ी करदो ! उन अतीत स्मृतियों को जिनके भींगे अञ्चल में जीवन के कितने ही लुटे हुए शृंगार सिसक रहे हैं; उन अतीत स्मृतियों को जिनकी धूमिल छाया के नीचे प्यार पनपने की

लालसा करता हुआ भी नही पनप पाता! और ? और उन पगली अतीत स्मृतियो को जिनमे जीव‌न के सारे अंधकार, जीवन की सारी कामनाये और जीवन के सारे अभाव एक साथ ही मिलकर, रह-रहकर प्राणों को विकल कर देते है, अतीत की उन मतवाली स्मृतियो को जिनकी आकुल याद में शाप और वरदान, आशा और निराशा, जीवन और मरण के कितने ही अनवरत द्वन्द्व अपनी सारी भयानकता और सारी कुटिलता, अपने सारे व्यङ्ग और उस व्यङ्ग की सारी तीक्ष्णता तथा अपने सारे उपहास और उस उपहास के सारे विष से जीवन को नरक बना देते हैं। उन स्मृतियो को, दुर्भाग्य भरी उन पगली स्मृतियो को जीवन प्रवाह की इस मन्द गति के बीच मत खड़ी कर दो, मेरे जिद्दी सुल्तान। मै पैरों पड़ती हूँ।

अब अधिक मत लिखाओ! गुरुदेव आज रात की ट्रेन से कही जाने वाले हैं। कुछ ठीक नहीं, मैं भी उन्हीं के साथ चली जाऊँ! तुम यहाँ मत आओ, मुझसे इधर भेंट होना असंभव है। इतने वर्षों के बाद अब पत्र-व्यवहार करना मुझे अच्छा नहीं जँचता। मैं इसकी कल्पना से ही काँपने लगती हूँ। भगवान क्षमा करें, गुरुदेव से छिपाकर मैं सप्ताह भर से आप से लिखा पढ़ी कर रही हूँ। अब भविष्य में कोई भी पत्र न भेजें। यह सुनो, पूजा का घंटा बजने लगा है। अब मैं भगवान के चरणों

एक बात का रहे, भविष्य मे

न करें। मुझ संन्यासिनी भिखारिणी

हँसने लगती हूँ, यह भी क्या वैसा

ड्डास है मेरे ...क ? अगर समझो तो अब भी—

तुम्हारी अपनी ही

—केसर

पुनश्च:—भविष्य में कोई भी पत्र न भेजे। इस पते पर तो निश्चय ही नही—के०

वही ऋषि-पत्तन

वही मंगलवार

आधी रात

देव,

आज पूजा में मन न लग सका, घण्टे घड़ियाल कब बज-कर चुप हो गये, गुरुदेव का उपदेश कब प्रारम्भ होकर कब समाप्त हो गया, सहेलियों ने कब प्रभु के चरणों पर अपने हृदय के भाव चढ़ा दिये, कुछ भी याद नहीं आता। कठोर संयम की गाँठ आज न जाने कहाँ से खुल पड़ी, हाय! तुमने इतने दिनों के बाद अब यह क्या प्रारम्भ किया है? प्रभु की मूर्ति आज दिखाई ही न पड़ती थी, आज जाना स्वामी, कि तुम्हे भूलने का सारा संघर्ष अर्थहीन हुआ। सोचा था स्वामीजी के इस आश्रम मे उनकी पवित्र छाया के नीचे प्रभु को छोड़कर और कोई कहीं नहीं, पर नारी क्या अपने स्वामी को—अपने प्रभु को कभी भूल ही नहीं सकती?

लेकिन नहीं, अब अपने उस प्यार को जो तुम मेरे लिये पाल रहे हो, मत पालो। उसके मूक संकेत पर भी अब मेरी आँखें चौंधिया जाती हैं, मैं अपने अस्तित्व को भूलने लगता हूँ।—अपने उस अस्तित्व को जिसकी दुनिया में पाप और पुण्य, पतझड़ और वसन्त, दिन और रात एक साथ ही अपनी क्रीड़ा किया करते हैं।—अपने उस अस्तित्व को, जिसे देखकर प्रभात के फूल इतराते हैं, संध्या-कालीन तारिकायें हँसती हैं, झरने की लहरें नाचती हैं—अपने उस अस्तित्व को जिसे देखकर आधी रात का सन्नाटा खिलखिला पड़ता है, पर्वतों का मौन जाग पड़ता है और भोर के तारे विकल हो उठते हैं।

तुम्हारे इस पवित्र प्यार का एक नन्हा सा संकेत भी इन पापी प्राणों के लिये विष से भी अधिक कटु मालूम होता है। तुम उसे, हे जीवन के अक्षय-शृंगार! उसे छोड़ दो ....

कामनाओं का जहरीला साँप अब अपने दुर्बल अस्तित्व से न लपेटा जायगा। इन पागल साँपों को अब मैं क्या खिला सकूँगी......इनकी भूख के लिये क्या अपने इस नन्हें से अस्तित्व को भी लुटा दूँ ?

अपने सामने अपनी पुरानी दुनिया का एक चलता फिरता चित्र देख रही हूँ, जैसे घटनाओं के वे चित्र अब भी वैसे ही भागते चले जा रहे हों, पर चित्र साफ नहीं दिखायी पड़ता! इस पर किसी

ने स्याही क्यों उँड़ेल दी ? हरे ! हरे !! इस पागल उन्माद की शृंखला को मैं जितना ही कसना चाहती हूँ यह उतनी ही ढीली पड़ती जाती है। सारा जीवन ही एक विशृंखल उन्माद बन गया है !

अधिक नही लिखूँगी। इस समय दो बज रहे हैं। कुछ ही घंटों मे यह स्थान छोड़ देना पड़ेगा। गुरुदेव कहीं की यात्रा किया चाहते है; पर कैसे गंभीर रहस्य हैं अभी तक किसी को नहीं बताया कि कहाँ की यात्रा किया चाहते हैं।

अपने किनारे से यह जीवन बहुत दूर निकल गया है। किन्तु तुम फिर उसी ओर खींच रहे हो........अगाध जल-राशि में डूब न जाऊँ ? ? ?

सुखी रहो,

अभागिनी केसर

दिल्ली,

रविवार २ बजे रात

चम्पा,

देखती हूँ बहुत इतराने लगी हो। जाओ मैं भी अब तुम्हें कोई पत्र न लिखूँगी। लेकिन मैं इतने ही से माननेवाली नहीं हूँ बीबी। मैं फरियाद करूँगी तुम्हारे उनसे और उनसे प्रार्थना करूँगी कि वे तुम्हे दण्ड दें। मुसकिराओ न, लेकिन अरे तुम तो मुस्कराती ही जा रही हो, "चोरी और सीनाजोरी" वाहरी चम्पा! किन्तु तुम आज ही तो ऐसी नही हो। तुम तो सदा से ऐसी ही रही हो। मुझे अब भी क्या तुम्हारी वे बातें भूली हैं जिन्हे तुम मेरी भौजी से कहकर मेरी हँसी उड़ाया करती थीं। तुम भले ही भूल जाओ पर मैं भूलनेवाली नहीं हूँ बीबी। मुझे क्या याद नहीं है कि एक बार जब हमलोग कालेज से लौट रही थीं और मेरी पुस्तक अकस्मात् हाथ से गिर गयी थी और हमलोगों के पीछे-पीछे चलने वाला—वही किशोर—अजी याद करो वही,

जिसको लेकर लक्ष्मी के सम्बन्ध में कितनी ही ऊल-जुलूल बात फैल गयी थी—अरी पगली तुम्हें याद नहीं आता वही जिसके कारण मिस मिलर, हमारी लेडी प्रिंसपल ने लक्ष्मी को कालेज से हटा दिया था—उसी किशोर ने जब मेरी पुस्तक उठाकर मुझे दे दी तो—याद है न बीबी, तुमने कितनी भेद-भरी दृष्टि मुझपर फेंकी थी और इसी के कारण तो भौजी ने मेरे गालों पर चाटें मारे थे। तुम्हे अब भी नहीं याद आता? याद करो उन चाँटों—निश्चय ही उन मधुर चाँटों—को तुमने हल्का बताते हुए कहा था न चम्पा, कि अभी क्या, जब तुम्हारी शादी हो जायगी, मैं तुम्हारे उनसे इस घटना की शिकायत करूँगी और उनसे भी मैं तुम्हे सज़ा दिलवाऊँगी। मगर बीबी तुम्हारे हाथ में अभी वह मौका आया ही नहीं, लेकिन मेरे हाथ में तो आ गया। मैं ही अब क्यो चूकूँ। मै तुम्हारे ऊपर अभियोग लगाती हूँ। इस हँसी से काम नही चलेगा वीवी। यह अभियोग है कन्ट्रक्ट तोड़ने का—कन्ट्रैक्ट तोड़ने का समझीं? तुम तो मुझे सज़ा नही दिला सकी, लेकिन—मैं तो अब दिलाऊँगी। तुम्हारे उनसे मैं शिकायत करूँगी बीबी! इतने दिनो तक पत्र न लिखने को क्या हँसी खेल समझ रखा है?

लड़कपन से ही मैं देख रही हूँ तुम सारी बातों को मुस्किराकर टालती जाती हो। लेकिन अब यह न होगा। यह मामला

संगीन है बीबी ! इसमें मैं सजा दिला कर ही छोड़ूँगी। प्रति सप्ताह पत्र लिखने का कन्ट्रैक्ट था और वह कन्ट्रैक्ट आज तीन सप्ताहो से टूट चुका है। मैंने नोटिस भी दी लेकिन कौन सुनता है ! जानती हो न यह अंगरेजी राज्य है, इसमें कानून तोड़ना हँसी-खेल नहीं। और फिर कन्ट्रैक्ट का कानून ? हमारे बड़े बड़े नेताओ को तो पेरोल की हाजिरी एक दिन न देने पर महीनों जेल की हवा खानी पड़ती है। अपने उन्हीं को देखो न ? अभी इसी साल तो पेरोल पर छूटे थे और केवल एक संध्या को थाने में हाजिर न हो सके और जाना पड़ा ६ महीने के लिये जेल मे ! क्या तुम्हारी भी यही इच्छा है ? ठीक ही है, पतिव्रता स्त्री जो हो ! कहते हैं गांधारी ने अपनी दोनो आँखो पर पट्टी इसलिये बाँध रखी थी कि उसके पति धृतराष्ट्र की दोनो आँखें अन्धी थीं और गांधारी के इस कार्य की प्रशंसा आज भी की जाती है। तुम भी तो आखिर हो हिन्दू ही ललना ! क्या दूसरी गांधारी बनने का शौक है ? लेकिन यह सौदा ज़रा महँगा पड़ेगा बीबी !

हाँ, लेकिन आखिर यह तो बताओ कि आखिर इतना मान क्यों ? तुम्हारा पिछला पत्र कितना मधुर था, आह ! क्या कहूँ, उस पत्र ने मेरे जीवन में किन-किन भावों की सृष्टि कर डाली। सच कहती हूँ चम्पा, तुम्हारी लाल उँगलियो से लिखे गये पत्र मेरे लिये कितने मधुर होते हैं·····लेकिन मैं तुमसे ईर्ष्या करती

हूँ चम्पा रानी, जीवन की इतनी मधुरता........मुझ अभागिनी निल्लो के भाग्य में इतना सौरभ कहाँ ?

विशेष नहीं लिखना चाहती। जब तुम मान ही करने पर तुली हुई हो, तो मैं भी मनाने नहीं जाती! मैं कसूर भी करूँ तब भी न मनाऊँ......और फिर जब कोई कसूर ही नहीं किया है, तो क्यो मनाने जाऊँ। तुम मान किये बैठी रहो। मैं भी तुम्हें पत्र नहीं लिखती !......

एक बार रामू को चूम लेना बहन! मेरी ओर से।

तुम्हारी निष्ठुरता की शपथ जब तक तुम्हारा मन्त्र पहले न आयेगा, मैं तुम्हे पत्र न लिखूँगी।

तुम्हारी ही

निल्लो

दिल्ली

मंगलवार

१० बजे दिन

चम्पा रानी,

तुम रूठी रहो। मुझे यह रूठना नहीं सुहाता। और फिर रूठना भी किससे? सचमुच तुमसे तो यह रूठना नहीं सुहाता! कवि ने झूठ नहीं कहा है बहन—

मेरा उनका बनना बिड़गना ही क्या?
निगाहें मिली औ हिजाब आ गया!

सुन तो लिया तुमने। मगर मैं जानती हूँ; तुम बाल की खाल खींचती हो! पहली पंक्ति में "उनका" पर तुम बहुत जोर डालकर पढ़ोगी और शायद कहोगी भी कि यहाँ यह छन्द अच्छी तरह नहीं बैठता। लेकिन तुम्हारी निल्लो ऐसा नहीं समझती! तुमसे मेरा अधिक और कौन प्रिय है। याद है न—तुम्हारी शादी थी, हमारी लेडी प्रिंसपल भी मौजूद थी। जब तुम्हारे उन्होंने तुम्हारे ललाट पर सिन्दूर लगाया तो—मिस

मिलर ने कैसी कैसी फबतियाँ कसीं थीं। जब उन्होंने कहा, "मैंने तो चम्पा को स्त्री-वेष मे निल्लो का प्रेमी ही समझ रखा था किन्तु आज पता चला कि वास्तव मे चम्पा पुरुष नही, स्त्री है!" उस समय की तुम्हारी आँखें मेरी आँखो मे वैसी ही समायी हुई हैं। उनमें कितना आनन्द, कितना प्यार और कितना गर्व भरा क्रोध था! पिता जी तो गद्गद् हो गये थे हमारे तुम्हारे साथ पर, किन्तु माँ की आँखों मे आँसू भर आये थे। उन्हे मेरा ललाट अच्छा नहीं लगा था। उसपर कुंकुम था तो क्या, किसी के हाथो का सिन्दूर तो नहीं था!

कैसी पगली हूँ। पुरानी बातो को छेड़ बैठती हूँ! लेकिन तुम्हारी पुरानी बातें कैसे निकाल दूँ इस जीवन से? मैंने पिछले पत्र मे लिखा था कि मैं अब तुम्हे पत्र नहीं लिखूँगी। मैंने तुम्हारी निष्ठुरता की शपथ भी खायी थी। लेकिन तुम्हारी निष्ठुरता कैसी बहन! तुम कभी निष्ठुर होगी और मुझसे? हाय री मैं पगली! मैंने क्या लिख मारा! काश मेरा रविवार वाला पत्र कहीं रास्ते में ही गुम हो जाता और तुम्हें न मिलता! उस पत्र में तो मैंने तुम पर नालिश करने की ठान ली थी और सोचती थी कि तुम्हे यह सजा दिलवाऊँगी कि 'वे' तुमसे जब कभी—जिस वक्त तुम्हारे अधरों का चुम्बन मागेगे, तुम्हे देना पड़ेगा। जानती हो, मुझे यदि उनकी ओर जरा भी पक्षपात

करने का सन्देह होता तो मैं उनपर भी दोषारोपण करती और उन्हे भी यही दण्ड देती। तुम शङ्का मत करो, पुरुप क्या नहीं कर सकते बहन ! दुनिया के अजायव घर के ये अनोखे जीव पूरे अद्भुत होते हैं।

लेकिन यह सब मैं क्या कहने लगी हूँ ? मै तो तुमसे इस वक्त एक खास बात कहना चाहती हूँ। इस समय यदि तुम मेरे पास होतीं, तो मुझे विश्वास है कि मेरे गालो पर तुम्हारी चपतें जरूर पड़ती। हाँ, तुमसे एक बात कहना चाहती हूँ मगर एक शर्त के साथ ! तुम कहोगी कि अगर शर्त ही रखनी है तो बात ही क्यो कहती हो। लेकिन मैं यह बात तुमसे कहे बिना रह नहीं सकती इसीलिये कहती हूँ और बिना शर्त रखे कह नहीं सकती, इसीलिये शर्त रखकर। देखना यह बात कही फूट न जाये। इस राज़ को मैं दिल मे ही छिपाकर रखना चाहती हूँ। दिल का यह राज दिल मे ही रहने दो याद रखो कि अगर यह बात कहीं फैली तो बस !

× × × ×

उस दिन रूप मंदिर में सिनेमा देखने चली गयी थी। खेल था प्रेम योगिनी। तुम जानती हो मुझे प्रेम से चिढ़ है। यह प्रेम भी क्या ढकोसला है चम्पा बीबी, इसके नाम पर कैसे कैसे ढोंग रचे जाते हैं, कितनी हत्याएँ इतिहास लिख चुका है इसके नाम पर;

कितनी निरङ्कुशता का समर्थन प्राप्त है इस अभागे शब्द को । कवि ने न जाने किन अज्ञात भावों में विक्षिप्त होकर गाया था–

"ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पण्डित होय !"

पर आज वह कवि अगर जीवित होता मेरी पार्कर से वह अभी इसे काटता—अभी इसे काटकर सुधारता और सुधारता–

ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो मूरख होय ।

प्रेम से कोई पाण्डित्य सीखेगा ? कोई पागल ही ऐसा कहेगा । प्रेम तो पागलपन—निरी मूर्खता—निरा पागलपन सिखानेवाली मानसिक व्याधि है चम्पा । प्रेम योगिनी के दूसरे दृश्य मे जब पहली बार प्रेम योगिनी अपने फटे चिथड़े में—पीत पाउडर संयुक्त चेहरे पर बिलकुल विक्षिप्त रिक्तता लाकर डगमगाते पैर से जंगलों में मारी-मारी बौरायी फिरती है उस समय मारे हँसी के दम निकलने लगा। प्रेम का स्वांग—हाय री दुनिया, प्रेम, व्यापक प्रेम, बात बात मे प्रेम······। प्रेम के अतिरिक्त जैसे कोई वस्तु ही नहीं। मारे हँसी के पेट मे बल पड़ने लगे। इधर मैं हँस रही थी उधर श्यामा की त्योरियाँ चढ़ी हुई थीं। उसने कहा—"तुम कब शऊर सीखोगी, पास में एक भलेमानस बैठे हुए हैं—उनका ध्यान ही नही। मुझे यह निर्लज्जता नही पसन्द है निल्लो।" मैंने पास मे बैठे हुए 'भलेमानस' पर नजर फेकते हुए श्यामा से कहा—"नाराज न होओ, मुझे यह देखकर हँसी आ रही थी

कि लैला, शीरीं और राधा की श्रेणी में ही इस प्रेम योगिनी का भी नाम क्यों न लिख लिया जाय ?" वास्तव में वात तो यह है चम्पा, कि मुझे कोई वात ही न मिली कि मैं कहूँ। लेकिन श्यामा ने कहा—"तो इसमे हँसने की कौन सी वात है ?" उसके शब्दों में रुखाई साफ झलक रही थी। मैंने मुसकराते हुए एक वार हाथ जोड़ा और फिर उसके सामने अपने गालों को ले जाकर मुसकराते ही हुए नम्रता से कहा—"इस अपराधिनी को दण्ड ?" ऐसा कहते कहते मैंने उस "भलेमानस" की ओर ताका। श्यामा ने हँसते हुए हलके हाथ से मेरा सिर हटाते हुए कहा—चल हट, अब भी तू अपना लड़कपन न छोड़ेगी।

मैंने देखा—हाँ, सचमुच मैंने देखा; मै भूल नहीं सकती चम्पा, उस मुसकुराहट को, उस माधुरी को और उस लापरवाही को जिनके साथ उन्होंने कहा, "इस तमाशे से तो आपका···" उनकी बात समाप्त नहीं होने पायी थी कि श्यामा बीच ही में कूद पड़ी "क्षमा की ·····" तव तक एक सीन निकल गया—"क्षमा कीजियेगा" श्यामा ने अपना वाक्य पूरा किया—"इसके मारे नाको दम हो जाता है", "मैं ज़रा भी बुरा नही मानता" उन्होने कहा—उन्होने कहा उसी तरह मुसकिराते हुए, उसी तरह मुझ पर अपनी आँखें डालते हुए। उस समय उनकी आँखो में हँसी थी, उनके अंग-अंग—उनके रोम रोम में हँसी थी। हाथ में दस्ती, गले

मे टाई, पैर मे पैराट—मै इनको—मै इन सबको एक केवल एक नज़र मे देख गयी। यह सब मै कैसे देख गयी और क्यों देख गयी, मैं इसे नही जानती चम्पा, किन्तु इन्हे देखते ही मैं जैसे झेप गयी! उन्होने मुझ पर एक गम्भीर दृष्टि डाली। इस समय उनकी आँखो मे हँसी नहीं थी—पतले अधर ज़रा से हिल उठे और वे गम्भीर हो गये। एक गम्भीर साँस निकली · पापी—मेरे पापी प्राण भी क्यो न इसी पवित्र साँस के साथ निकल गये।

चम्पा यह रविवार की घटना है। पर उसी क्षण से उसी पल से यह घटना—घटना, क्या वह नन्ही सी मुसकिराहट अभी भी आँखो मे समायी हुई है। उनकी आँखें मेरी आँखो में समायी हुई है—हायरी वह मुसकिराहट··वह आँखो में किरकिरी सी बनकर गड़ गयी है। तुम मेरी निर्लज्जता पर हँसो मत। इस समय मैं दया की पात्र हूँ चम्पा। हायरी मैं! हृदय के किस कोने में यह तार पड़ा हुआ था और कैसे यह अछूता तार किस स्पर्श से अकस्मात् ही बज उठा! इसे मैं कैसे बताऊँ चम्पा रानी। अभी हृदय मे जो भाव जाग पड़े है, उनका क्या अर्थ है? जीवन मे ऐसे अनुभव तो कभी नहीं हुए थे—ऐसे भाव तो कभी नही जगे थे। जी करता है इन्हे भूल जाऊँ। मगर जी करने से क्या होता है। इन्हे तो जितना ही भूलना चाहती हूँ उतना ही ये याद आने लगते हैं। मैने रात में कितने ही सपने देखे हैं, निद्रित

और जागृत दोनों अवस्थाओं में मैं अपने को इस जादूभरी मुसकिराहट से घिरी पाती हूँ। मुझे क्यों?—मुझे क्यों यह घेरे हुए है चम्पा रानी ?? दिल में जिस बेकली का, हृदय में जिस कम्पन का, प्राणों में जिस आन्दोलन का अनुभव कर रही हूँ, उन्हे मैं कैसे समझाऊँ? उन्हे तो मै स्वयं ही नहीं समझ पाती। और समझूँ भी कैसे चम्पा बीबी, इन्हे समझने की इच्छा करते ही मैं स्वयं अपने को भूलने लगती हूँ! अजीब भूल भुलैया मे पड़ी हूँ। प्रेम योगिनी देखकर हँस रही थी, मगर अब रो रही हूँ। इस मधुर पीड़ा का—इस नादान बेकली का—इस मौन कम्पन का अर्थ क्या है? मेरी आँखों में कोई और भाव क्यों दिखायी पड़ता है? मेरी नसों में कोई और खून क्यो बहने लगा है? मेरे प्राणो से कोई और राग क्यों पैदा हो गया है और मेरी साँसो में कोई और स्वर क्यो बजने लगा है। इन सब को—इन सब को तुम मुझे समझाओ चम्पा रानी! मान न करो। इनका अर्थ मुझे समझाओ चम्पा!

तुम्हारी ही—

पगली निल्लो।

आगरा की गोद में

रात का दूसरा पहर

"रानी !

इसे भी—इस सम्बोधन को भी जब तुम उपहास मानती हो तब मेरा दुर्भाग्य मुझे विकल करने लगता है और मुझे मालूम होता है मानो मुझे पर्वत से—पर्वत के उच्चतम शिखर पर से कोई ढकेल देने की धमकी दे रहा हो। यह भी उपहास ?.....
यह कैसी प्रतारणा है केसर रानी ! मेरे जीवन में अब तुम्हें उपहास के अतिरिक्त और कुछ दिखायी ही नहीं पड़ता, इसी लिये तुम व्यंग कर रही हो—'मुझे केसर रानी न लिखा करें, मुझ संन्यासिनी भिखारिणी के लिये यह सम्बोधन ··मैं हँसने लगती हूँ···यह भी क्या वैसा ही उपहास है मेरे मालिक ?' यह चाहे उपहास भी हो, परन्तु तुम तो साफ साफ उपहास कर रही हो। उपहास करो, तुम उपहास करती चलो मेरी रानी, लेकिन यह जानकर उपहास करो कि तुम मुझसे नही, मेरे भाग्य से उपहास कर रही हो। अपने मालिक को भविष्य में ऐसा न करने का

साथ ही आदेश भी। उपहास और आदेश—आदेश क्या, चेतावनी और यह दोनो एक साथ ही ! यह भी क्या कम उपहास की बात है ! लेकिन इसके साथ ही—"बस, इस झगड़े का यहीं अन्त करती हूँ। तुम अपने पत्र में यह सब कैसी बातें भर देते हो ? जिस दिन आपको अन्तिम पत्र लिखा था—वही पत्र—जिसके अन्तिम शब्दों से आप अपने इस पत्र मे इतने उलझ उठे है—उसी दिन गुरुदेव आगरे चले आये ! और आपका यह पत्र मुझे आश्रम से रि-डाइरेक्ट होकर यहाँ मिला है !—

इस समय रात का दूसरा पहर बीत रहा है। चाँदनी की यह भीगी रात ताजमहल पर कितना दूध उडेंल रही है। गुलाबो की कलियाँ हवा से अठखेलियाँ कर रही है। कहीं मतवाला गुलाब अपना सौरभ लुटा रहा है। एक ओर सारा संसार सो रहा है और दूसरी ओर संसार के निद्रित कोलाहल से दूर हटकर प्रकाश की मोहक छाया के नीचे यह प्रेम-लीला चल रही है। सारी प्रकृति शान्त, नीरव, स्तब्ध। केवल फूलों की सुगन्धि से लदे हुए हवा के अलसाये गीत कानो मे एक प्रकार की सिहर भर जाते है। वसुधा चाँदी के द्रव का परिधान लपेटे पड़ी है। कभी न जाने किस स्वप्न से चौंककर कदम्ब का एक पत्ता काँप उठता है। संसार के किस कोने में केसर का कौन सा फूल अपनी अनुपम छबि के मतवाले सौरभ में कितना और कब से

इठला रहा है, और समीर कभी लहरा कर उसका सौरभ लूट कर भी उसे कैसे कठोर थपेड़े मार जाता है, इसका पता उस अन्तर्यामी के अतिरिक्त और किसे है ?

इस घोर निस्तब्ध निशा मे इस छोर से उस छोर तक केवल पवन हिलोरें ले रहा है। कौन जानता है, रात के इस सन्नाटे मे जब सारी दुनिया अपने को भूल जाती है और जब कान तक प्रत्यञ्चा खींचे कामदेव मानो ललकार कर यौवन को सावधान करता है कि बस, नींद मे लिपटे रहो, जागे नहीं और बस ·····। उस समय समीर अपनी भुजाओं को इस सूनेपन मे बढ़ाये हुए क्यो दौड़ा करता है ? किन्तु · किन्तु पवन का यह प्रकम्पन उद्वेलित क्यों कर उठता है ? रात की इस निद्रित अवस्था मे कभी प्राणो के तार हिल क्यों उठते है ? जब इनमे स्वर नहीं बज सकता, तब तारो का यह कङ्काल अपना अभ्यास क्यों नहीं छोड़ता ? बादल चन्द्रमा को छिपा नहीं सकते, कहीं कहीं उनके छोटे-छोटे टुकड़े आकाश-गंगा में रेत की भाँति खड़े है। वे चन्द्रमा को ढँक नहीं सकते, इसलिये चन्द्रमा हँस रहा है, लेकिन ये तार-क्यो बज उठते है ? इनमे प्राण नहीं— स्वर नहीं—लय नहीं ! फिर लालसाओ का सूना कङ्काल पराजित दुस्साहस की भाँति तनकर क्यो खड़ा हो जाता है ?

देवता ! हवा के साथ ही अपने मनोभावो को लेकर मै कहाँ

उड़ती जा रही हूँ। कलियाँ खिलती हैं तो क्या, फूल सौरभ बाँट आते हैं तो क्या, समीर आलिंगन खोले मतवाला-सा भागता रहता है तो क्या; और चन्द्रमा अपनी सारी छवि में उन्मत्त होकर मदिरा उड़ेलता रहता है तो क्या;...मुझे कलियों की छवि, फूलों का सौरभ, हवा का कम्पन और चन्द्रमा का उन्माद, कुछ भी—मुझे कुछ भी नहीं चाहिये, मै हाथ जोड़ती हूँ—मैं पैरों पड़ती हूँ, देवता, मैंने इनकी चर्चा.....पगली केसर, अभागिनी केसर तू इनकी चर्चा क्यों करती है—? तू इन्हे अपने जीवन के इतिहास से सम्बद्ध क्यों करती है ??

इस समय भाव बिखर रहे हैं, हवा में उड़ते जा रहे हैं, मैं इन्हें पकड़ नहीं पा रही हूँ! दिल मे बेचैनी, आँख मे बेचैनी, ओह! सिर तड़क उठा.....इस समय यहीं तक स्वा...मी!

—केसर।

उसी रात का सबेरा,

× × ×

......!

भगवान की दया है, इस समय मनोभावो मे बिलकुल ही परिवर्तन हो गया है, जैसे पक्षियों के कलरव से मैं बिल्कुल ही जाग पड़ी हूँ। पिछली रात के मनोभाव! मुझे क्या हो गया था भगवान्। मैं इतनी चंचल क्यो हो उठी थी? इतने दिनों तक

गुरुदेव के तपोवन मे रहकर भी भावों मे इतना उद्वेलन ! पिछले विचारों को सोचकर मैं लज्जित हो जाती हूँ। मैं अपना अन्त-करण टटोलती हूँ कि ये भाव .कहाँ छिपे बैठे थे, जो बरबस अकस्मात ही उठकर आन्दोलित करने लगे ! मुझे कुतूहल हो रहा है उस सोते को देखने का, जिसके प्रवाह में बहती-बहती मैं इतनी दूर चली आयी। लेकिन फिर मैं उन्हीं की चर्चा क्यों करने लगी ? पिछली रात के मनोभावो के लिये बड़ा परिताप हो रहा है स्वामी ! घट घट के भीतर का हाल जाननेवाले अन्त-र्यामी क्या इसके लिये क्षमा कर देंगे ? अपनी तमाम दीनता से मैं तुम्हारे चरणो पर सिर झुकाती हूँ प्रभो !

इतने दिनो के बाद दानवता-सी न जाने क्यो खेलने लगी है। पिछली रात की तमाम बातो पर विचार करते करते न जाने क्यो उलझने लगती हूँ। कितने दिनो बाद कल रात मे सपने दिखायी पड़े। आपको पत्र लिखते-लिखते जब मै बेचैन हो उठी थी, मेरे सिर में ज़ोरों से पीड़ा शुरू हो गयी और लेट गयी। देखती हूँ चाँदी के दिये जल रहे हैं। सेज बिछी हुई है, मैं सोने का प्रयास कर रही हूँ। पर नींद नहीं आती ! अप्सराओ की आँखो से प्रकाश पाकर तारे आनन्द की सिहर-से टिमटिमा रहे थे, खिड़की की राह से अनन्त कोस पर उनका यह विह्वल डभचुभ देखते देखते मुझे ऐसा लगा कि इन्हें ही देखते रह जाऊँ, पर न जाने कौन

अभागा प्राणी न जाने किस जगह बैठा हुआ अपने टूटे से तान-पूरे पर रह रहकर मिज़राव मार दिया करता और एक असम्बद्ध-सी ध्वनि झनझना उठती। ऐसा असामञ्जस्य मेरे सुख को रह रहकर चचल कर उठता और मैंने खिड़की बन्द कर डाली! लौटी तो प्रकाश तेज़ था, मैंने दो वत्तियाँ कम कर दीं और सो गयी। न जाने कब मेरी आँखें सोईं और जागीं, मगर जब जागी तो मस्तिष्क सुगन्धि से भर उठा एक बेचैनी सी आयी, अभागा प्राणी अब भी वही टूटे तारो को अपनी उँगली से रुला रहा था। ठीक याद नही आता फिर पलके कब गिर पड़ी। अन्तर्यामी जानते है स्वामी उन पलको के भीतर किसके चरणो की रेखाएँ खिच रही थीं!

इतने ही मे जैसे आहट का भान हुआ, पर मै निद्रा की पागल वेहोशी मे ही पड़ी रही। लेकिन हाँ, धुँधली स्मृति की भाँति याद है किसी ने जैसे आँचल खिसका दिया हो। मैंने नींद में ही करवट बदली। जवानी को न जाने किस दुर्वासा ने आलस का अभिशाप दे रखा है। मैं उठी नही। लेकिन स्वामी, देखती हूँ तुमने मुझे अपनी गोद मे उठाकर रख लिया है, मै उस समय भी नींद में ऊँघ ऊँघकर गिरती पड़ती हूँ। तुमने चिबुक पकड़ कर मेरा मुँह ऊपर की ओर उठाया। मैं जैसे उझक-सी उठी और इस उझक के साथ ही मेरी आँखे खुल गयीं। सपने का तार टूट गया।

यह सपना था। लेकिन इसे ठीक ठीक सिर्फ सपना ही कैसे कहूँ ? अब से कई साल पहले सुहागरात की सत्य घटनाएँ भी तो ठीक ऐसी ही हुई थी स्वामी ! सुहागरात की उस भूली हुई स्मृति की याद आज सपने में क्यों देख रही हूँ ? यह उदास घड़ियाँ जीवन की उन मधुर घड़ियो में क्यो झाँक रही हैं।

कल संध्या को ताजमहल देखकर आयी थी। ताजमहल को देखकर जो रागिनी प्राणो में बज उठती है, हाय ! उसमें कितनी पीड़ा है, कितनी व्यथा ! शाहजहाँ और मुमताज़... ये दोनों—ये दोनों आज नही है;—नहीं है इस नश्वर जगत में—इस पापी दुनियाँ में। वे मर गये, पर उनका प्रेम अमर है, आज भी ताजमहल के पास की हवा उन्ही की प्रेम-रागिनी से मत-वाली फिर रही है। आज भी गुलाबों की पंखुरियाँ, उन्हीं के मार्ग में अपने हृदय का सारा सौरभ लुटाती फिर रही हैं। और आज भी उन्ही की रंगीन-प्रेम लीलाओ को देखने के लिये सोने और चाँदी की किरणें स्वर्ग से उतरकर ताजमहल मे चुपके से झाँका करती है। यमुना की पागल लहरे आज भी उन्हीं की याद में प्राणो का गीला-गीत गुनगुनाती बही जा रही है, यमुना की दीवानी लहरे आज भी ललचाकर ताजमहल का दामन चूमती अपने भाग्य पर फूली नही समाती। हुस्ने-हिना से कोई पूछे कि तू कुचली जाने पर क्या मुमताज की याद मे ही खून के आँसू रो

पड़ती है और लाड़ली चमेली से कोई पूछे कि तू खिलकर इतनी जल्दी क्या इसलिये मुरझा जाती है कि तुझे तोड़कर मुमताज़ की मज़ार पर चढ़ानेवाला तेरा कोई भी आशिक नहीं ?

फूल कुम्हला गया। सौरभ शेष है; तार टूट गया, स्वर बज रहा है। ताजमहल प्रेम की वह छवि है, जिसमे कही व्यथा के रंग हैं, कही प्रेम की क्रीड़ाओं की रेखाएँ और कही आँखों के उन्माद, प्राणो की रागिनी, बेकली का मतवालापन। मुमताज की सदैव शराव से छकी हुई आँखें, आलस से झुकी हुई भौंहे, अँगड़ाई से टूटता हुआ शरीर और जम्हाई लेने पर सेव से गालों पर उतर आनेवाला रक्त,—आज भी ये सब क़फ़न लपेटे सो रहे है। कौन जानता है कि इस रूप की रानी की समाधि पर दो फूल चढ़ाते समय रमणियो के हृदय मे रहनेवाले प्रेम के देवता याद नहीं आ जाते, कौन जानता है कि कैशोर से दो पग आगे बढ़नेवाली लड़कियो के हृदय के तार उस समय किसी अज्ञात स्वर मे झनझना नहीं उठते और कौन जानता है कि उस समय कितनी ही रमणियाँ अपने को उस तन्मयता में नही भुला देतीं, जिसे योगी ध्यान करते समय, प्रेमी प्रियतमा की आँखों को देखते-देखते और गायक अलाप लेते-लेते प्राप्त करता है। पर दूसरे ही क्षण वे उझक उठती हैं, जैसे छीपी की डोर हिल जाने पर मछुए ने मछली को उझक दिया हो। किन्तु······

किन्तु अभागा शाहजहाँ और उससे भी भाग्य-हीन औरंग-जेब—इन दोनों के साथ कैसी निदारुण कहानी विजड़ित है। औरंगजेब के जीवन की प्रस्तावना और शाहजहाँ के जीवन का उपसंहार—एक के जीवन का अथ और दूसरे के जीवन की इति—हाय ! किन दारुण घड़ियों में यह नाटक आरम्भ हुआ !

जिस शाहजहाँ ने किसी दिन चाँदी के दीपकों की भाँति जलती हुई अपनी दोनो आँखों को मुमताज़ बेगम की तारिकाओं-सी प्रज्ज्वलित आँखो से मिलाकर संसार के सबसे अतुल सौन्दर्य का आदान-प्रदान किया था, उसी शाहजहाँ को—शाहजहाँ की उन्हीं आँखों को औरंगजेब ने किस प्रकार के परिणाम का सामना करने पर विवश कर दिया। शाहजहाँ की एक प्रेम-कहानी कुछ दिन पहले एक पुस्तक में पढ़ी थी। शाहजहाँ और मुमताज बाग़ के एक कोने मे बैठे थे। शाहजहाँ ने कहा:—

"सुल्ताना !"

"मेरे आक़ा !"।

"तुम मुझे कितना प्यार करती हो ?"

"और तुम ?"

शाहंशाह ने खाली प्याले में शीराजी उड़ेलते हुए—मचलते से कहा—"बताओ न मेरी लाड़ली रानी !"

"और अगर न बताऊँ तो ?" बेगम ने शाहंशाह की आँखो को तन्मयता-पूर्वक देखते हुए इतने धीरे से कहा कि वे मुश्किल से सुन सके।

"तो ?"

शाहंशाह का प्याला होठो तक पहुँचते पहुँचते रुका-सा रह गया—"तो मेरी सुल्ताना, मैं समझूँगा—"

"कि हिन्दोस्तान के बादशाह सलामत को—" सुल्ताना ने बीच ही मे बात काट दी।

"तुम प्यार नही ....."

"पर ऐसी गुस्ताखी के लिये बादशाह सलामत उसे—"

"सजा नही .."

"...अपनी पा-बोसी नहीं करने देते।" सुल्ताना ने बात पूरी की।

"पर बताओ न सुल्ताना आखिर क्या तुम मुझे.....और मैं तो सुल्ताना", बादशाह ने एक घूँट ली—"मैं तो तुम्हें इतना प्यार करता हूँ कि तुम्हें प्यार करते करते तुम्हारा.....भिखारी बन बैठा।" शाहंशाह ने दूसरी घूँट ली।

"और मै तो" सुल्ताना ने शाहंशाह की आँखों से अपनी आँखो को मिलाते हुए आत्म-विभोर-से स्वर में कहा,—"मै तो राजा तुम्हें इतना प्यार करती हूँ कि तुम्हें प्यार करते करते तुम्हारी रानी बन बैठी।"

शाहंशाह रीझ गये ।

रानी के सिर की साड़ी खिसककर वेणी के फूलों पर आकर अड़ गयी थी । उनकी आवाज में एक अनोखा कम्पन था । शाहंशाह ने काँपते हुए हाथो से प्यालो सुल्ताना के होंठों से लगा दी । उन्होंने एक बार शाहंशाह को ओर देखा, दूसरो बार प्यालो की ओर और फिर धीरे से बिना कुछ बोले ही अपलक नयनों से सम्राट को देखते हुए मधुरता से सिर हिला दिया 'नहीं ।'

कहानी-लेखक ने लिखा है, सौन्दर्य के इस मादक सोते पर शाहंशाह सौ जान से रीझ गये । उन्होने धीरे से प्याली अलग रख दी, बाहे बेगम के गले मे डाल दीं । ठोढ़ी ऊपर उठायी और उनकी अर्द्ध-निमीलित अलस आँखो को देखते हुए कहा—"आज से मैं तुम्हारी आँखों की ही मदिरा पिया करूँगा सुल्ताना, समझीं ?"

"समझीं ।" सुल्ताना ने फिर बिना कुछ कहे ही संकेत से बताया "समझीं ।"

उस समय तक, कहानी लेखक ने आगे चलकर लिखा है कि सुल्ताना शाहंशाह की भुजाओं मे आ चुकी थी । रानी का भिखारो काँप रहा था और राजा की रानी की साँसें जैसे बाहर होकर चल रही हो !···उस समय एक पत्ता भी गिर पड़ता तो आवाज हो जाती किन्तु यदि पहाड़ भी भहरा पड़ता तो वे न सुन सकते !

पर शाहजहाँ और मुमताज़ आज जीवन की सारी कहानियाँ, प्रेम के सारे आख्यानो और व्यथा के सारे इतिहासों को लपेटे क़ब्र में सो रहे हैं। समीर उनकी समाधि को एकान्त में ललककर चूमकर यमुना के वक्षस्थलपर अपने चुम्बनों को छोड़ आता है और लहरें उन्हीं चरणों को एकबार चूमने के लिये ताजमहल की दीवारों से निरन्तर—रात दिन संघर्ष करती जा रही है। पर लहरों की इन चञ्चल अभिलाषाओं का उत्तर कौन दे? कौन दे स्वामी ??

आगरे के आकाश मे चाँद अब भी निकला करता है, आज भी निकला है; आगरे के वायु-मंडल में हवा अब भी चला करती है, आज भी चल रही है; परन्तु चाँद में अब न वह प्रकाश है, हवा में न वह संगीत है। अब और आज चाँद अपनी छबि में इतराकर न तो किसी के गालों को समता करने के लिये उगा करता है; अब और आज हवा किसी के सौन्दर्य से मचलती नही फिरती। ये केवल मनोभाव नहीं हैं स्वामी, यह केवल भावुकता नहीं है। यह केवल स्वप्न का उन्माद अथवा उन्माद का स्वप्न नहीं है। यदि तुम्हें विश्वास न हो तो इनकी साक्षी लो भूमि पर लोटते हुए रजकणों से, आकाश में विक्षिप्त तारिकाओं से, क़ालिन्दी की उन्मत्त लहरों और सिसकते हुए पवन-कम्पन से। इनसे पूछ देखो मैं झूठ बोलती हूँ!

आगरे पर चाँद निकला है, ताजमहल पर चाँद निकला है, और मेरे आँगन में भी चाँद निकला है। पर आगरे के अन्तस्तल में अँधेरा ही है, मुमताज़ की क़ब्र में अँधेरा ही है। और मेरे प्राणों के भीतर भी..., पर जाने दो स्वामी ! मैं तो इस अन्धकार मे भी मुसकिरा रही हूँ। सुदूर तक फैली हुई सैकत-शय्या पर विक्षिप्त पड़ी हुई एक बालुका-कणिका पर प्रकाश की एक रेखा फूटी—न फूटी ! कँटीली झाड़ियों के बीच एकान्त में अपने नन्हें से अस्तित्व को लेकर विस्मृत पड़ी हुई नन्हीं-सी कुसुम-कलिका पर किरणों की तनिक-सी छाया फूटी—न फूटी !!

लेकिन अब क्या लिखूँ ? भावों से विहीन-सी हो गयी हूँ, हाथ नहीं बढ़ रहे हैं।

आपकी ही—

केसर

आगरा,

सोमवार

प्रातःकाल

निल्लोरानी,

तुम्हारे दोनो पत्र मिले। तुम्हारा चित्र भी। मगर समझती हूँ, यह चित्र शायद भूल से मेरे लिफाफे मे भर दिया गया है। मुझे पता नही मालूम, नहीं तो उन्हीं के पास रि-डाइरेक्ट करा देती! हाथ मे दस्तो, पैर मे पैण्ट, गले में टाई! तूने यह सब क्या लिख डाला है री! जब इन्हीं सबको लिखना था, जब यही सब लिखना था, तो यह भी क्यो न लिख डाला कि सिर के बाल कैसे थे, आँखों की बरौनियाँ कैसी थीं। पैर के जूते ब्राउन थे या ब्लैक! अरी वो पगली नीला! तू यह सब क्या लिख डालती है?

मगर बहन, हँसी नहीं करती हूँ, कभी मिलन भी हुआ था? वे दिल्ली में क्या करने गये थे? यही सम्राट की राजधानी में

तुम्हारा दिल चुराने ? तुमने तो उनकी मुसकिराहट आँखों में बसा ली और उन्होंने ? उन्होंने अपनी आँखों में क्या बसाया नीला ? तुम्हारी चपलता ? तुम्हारा अनोखा लावण्य ? तुम्हारी शराब-सी आँखें ! ज़रा बता न री ? उन्होने तो तुझे लिखा ही होगा। और हाँ, उनका चित्र भी क्यो न भेज दिया ? डरती क्यों हो नीला बहन, मैं क्या डाक बोलती ?

तुमने जितना लिखा है, उतने से तो सन्तोष नहीं होता। अरी ओ उन्मादिनी ! कुछ और भी क्यो न लिख डाला ? सखी हसीना को बुलाकर ज़रा उनका नाप-जोख भी लिखती। कितने ऊँचे है। तुम मोटे आदमियों की दिल्लगी उड़ाया करती थीं, लेकिन तुमने उन्हे पसन्द किया है, इससे तर्क तो यह ज़रूर कहता है कि वे मोटे नही है। पर कहते हैं कि प्रेम के मामले मे तर्क से काम नहीं लेना चाहिये। इसीलिये तो कहती हूँ कि अब्बा रमज़ान की लड़की सखी हसीना से ज़रा उनकी नाप-जोख लिख कर भेजना, समझीं निल्लो रानी ?

अब तुम्हारी शिकायत की ओर आती हूँ। बहन नीला, हमारे वे आजकल भारी झंझटों में फँसे हैं और उन्हीं झंझटों में मैं भी उलझ उठी हूँ। देश-भक्ति इस देश में कदाचित् विपत्ति के अर्थ में प्रयुक्त होती है और किसी देश-भक्त की पत्नी होना तो नीला बहन, निरन्तर काँटों पर सोना है। पिछले दिनों इतनी

चञ्चल रही हूँ कि यमराज भी अगर लेने आते तो इन्कार कर देती, अवकाश कहाँ था मरने का नीला बहन ? बस इस समय अभी इतना ही। अरी तू रूठना न। अब आने दे, मैं तेरे सारे दण्ड सह लूँगी। तूने मेरे लिये तो दण्डों का विधान कर डाला है, पर अब तो मैं भी तुझे ऐसा ही दण्ड दे सकती हूँ, क्यों री ?

अरी यह देख लल्लू जाग पड़ा। दूध से धुली इसकी अबोध आँखें इस समय मुझे देख रही हैं नीला। बस इस समय इतना ही।

तुम्हारी अपनी

—चम्पा

गार्डेन

दिन का दूसरा पहर

रानी !

तुम रूठोगी, फिर वही सम्बोधन, फिर वही भाव और फिर वही अनुनय। किन्तु क्या करूँ, जीवन की समस्त सीमाओं के चारो ओर यही तो घेरे खड़े हैं। यदि इन्हे उपहास मानती हो तो माना करो, यदि इन्हें व्यङ्ग समझती हो, तो समझा करो। क्षण भर के लिये—और यदि जीवन के अवशेष भर के लिये भी मेरे जीवन भर मे इस भिखारी की रानी को केवल उपहास और व्यङ्ग ही दिखायी पड़ता हो, तो इसमें मेरा दुर्भाग्य ही है। मेरा वह दुर्भाग्य जिसने पिछले वर्षों के मेरे नये जीवन की अवधि के प्रत्येक पल को हँस-हँस कर रुलाया है, वह दुर्भाग्य जिसमें तप-कर सारा यौवन—यौवन की सारी आंकाक्षाएँ—आंकाक्षाओं

की सारी चञ्चलता और चञ्चलता का सारा प्रवाह मेरी आँखों से उमड़ कर वहता रहा है ! तो इसी रुदन में इन व्यंगो और उपहासों के तीर खाकर भी—एक वार और जी भर कर रो लूँगा और क्या कहती हो ?

इस पत्र-व्यवहार के वीच—और यदि इन शब्दो को पढ़ कर तुम यह न चिल्ला पड़ो कि "तुम झूठे हो" तो कहूँगा कि पत्र व्यवहार के पहले दिनो मे भी जव से इस वात का पता लगा कि तुम स्वामी जी के तपोवन में हो तभी से कितनी वार प्राणों की इच्छाओ ने तुमसे मिलने के लिये उभारा, किन्तु बीच में अपने पिछले कर्मों की ऐसी पतित छाया आकर खड़ी हो जाती है कि मेरा समस्त साहस क्षीण होने लगता है और पैर नहीं उठते। काश, तुम एक बार जान पातीं और विश्वास कर पातीं केसर रानी, कि किस प्रकार मैं यह अन्धकार काट रहा हूँ। मेघ-मालाओं ने तिमिर का इतना घना आवरण चढ़ा रखा है कि जुगुनुओं के चञ्चल आलोक में इसका पता पाना एकान्त असम्भव है। और क्या किसी और के लिये ? स्वयं मेरे ही लिये रानी, बुलबुल को उस टहनी का पता नहीं जिसपर वैठ कर वह रो रही हो। किन्तु...

किन्तु मुझे तो इन जुगुनुओं के प्रकाश का भी सम्बल नहीं है केसर, इस घने अन्धकार में मुझे अपनी ही छाया का पता

नहीं है। काश, एक बार तुम्हारी आँखों का प्रकाश मेरे दुर्गम पथ को आलोकित करता! सागर के थपेड़ों में बह रहे इस तृण को, ऐसा जी करता है कि, कोई लहर आकर किनारे की ओर क्षण भर के लिये ही बहा ले जाती।

अपने पिछले जीवन पर जब एक नजर डालने की इच्छा करता हूँ तो आँखें पीछे फिर जाती हैं, जैसे लपट लग रही हो। कितना लज्जित हो जाता हूँ जब यह सोचता हूँ कि तुम्हारे जीवन में मुझे अमावश्या के अन्धकार की आशङ्का तो हुई पर साथ ही पूर्णिमा की आभा का भी विश्वास क्यों न हुआ। सुहाग रात की वह पहली भूल''हाय री मानव-दुर्बलता—कदाचित् आखिरी भूल भी हुई और तभी से चिनगारियाँ बटोरने मे लगा हुआ हूँ। यह काम आज भी समाप्त होता नहीं दिखायी पड़ता। मैं अभागा इन्हीं चिनगारियों मे झुलस रहा हूँ, एक साथ ही जल भी नहीं जाता!!

आगरे से लिखे गये तुम्हारे दोनों पत्र मिले और इन पत्रों ने मुझे पागल बना डाला। पर मेरा दुर्भाग्य तो देखो केसर रानी कि इस पागलपन में भी मैं अपनी चेतनाओं से वैसा ही लिपटा हुआ रह गया जैसा कोई भी सचेतन प्राणी। लेकिन अपने पत्रों में मेरे पत्रों के लम्बे-लम्बे उद्धरण क्यों देती जाती हो? लज्जित करने का यह कौन सा ढंग अपनाया तुमने देवी! और फिर ताजमहल के

दुःखान्त अभिनय की याद मुझे क्यों दिलाती हो, जब कि मैं उसे सुखान्त ही समझता हूँ। शाहजहाँ ने सुल्ताना के लिये क्या नहीं किया ? मैं कहूँगा, बेगम मुमताज के कारण ही शाहजहाँ प्रेम के दीवानों को दुनिया में सिर उठाये खड़ा है। और मैं... अभागा मैं केवल कलङ्कित होने के लिये जी रहा हूँ।

मुझे याद आता है। हमारे मिलन की वह पहली रात थी। वही स्वप्नों की रंगीन रात हमारे लिये काल-रात्रि बन गयी देवी ! उस रात की सारी घटनाएँ प्रत्येक क्षण आँखो के सामने घूमा करती हैं। उस विस्मृति की स्मृति आते ही छाती धड़कने लगती है और प्रत्येक स्पन्दन पर हृदय के टूट जाने की आशङ्का होने लगती है।

मुझे याद आती है न सुहाग रात की वह रंगीन संध्या। यौवन के उन्माद की तरह इस सन्ध्या से ही मैं चञ्चल हो उठा था। और रङ्गमहल के दरवाजे पर पैर पड़ते ही जैसे किसी ने गुदगुदा दिया हो। मैं बढ़ा—क्षण भर तक न जाने क्या सोचता रहा। हाँ याद आया, सोचता नही था। हृदय की धड़कनो को बन्द करने का प्रयास करता रहा। हृदय पर न जाने कैसी तरल मदिरा बह रही थी, इच्छाओं पर इन्द्र-धनुष के न जाने कितने रङ्ग चढ़ रहे थे, प्राणो में न जाने कितनी तरह की गतें बज रही थीं। इन्ही को—इन्हीं रङ्गीन तस्वीरों और इन्हीं विकल गतों को

चपल आँखें भी न देख सकें और हृदय के पागल स्पन्दन भी न सुन लें, इसीलिये रुक गया था—एक क्षण के लिये—एक पग। सामने ही संसार का सारा वैभव बिखरा पड़ा था। दीपकों की धीमी-धीमी लौ—सोने की तार-सी—न जाने किस स्पर्श से रह-रहकर हिल जाती और उसकी सिधाई में एक कम्पन आ जाता; जैसे मेरे हृदय के स्पन्दनों से ही वे हिल उठी हों। धूप-बत्तियों की धीमी-धीमी रेखा—शान्ति के साथ अचंचल गति से एक ही मार्ग को पकड़े चली जाती थी। तो क्या चञ्चल था केवल मै ? पर प्रकाश भी तो रह-रहकर काँप उठता था। दीवाल के बड़े से दर्पण में तुम्हारा—तुम्हारे मुख का—सौन्दर्य अचचल पड़ा था। बत्तियो की लौ कभी काँपकर तुम्हारे होठ छू लेती; पर अगर की हल्की-सी पतली धूम-रेखा गालों पर से एक ही गति से उसे सहलाती फिसलती जा रही थी। मैंने उँगलियों से दर्पण को स्पर्श किया पर न तो वह लौ-रेखा हटी और न धूम-रेखा ही। मैंने आवेग से सम्पूर्ण दर्पण पर हाथ फेरा! यह कठोर स्पर्श कितना कोमल था। मैं अपने निश्वासों से उझक उठा। अपने ही को देखकर सहम जाता! हाय री दीपमाला, काश तू न होती!

पैर आगे बढ़ाया और हृदय जोर से धड़क कर तेजी से चलने लगा। अपने ही से लज्जा आ रही थी, पर तुम्हारा वह

सोया सौन्दर्य आगे खींच रहा था केसर रानी ! तुम सो रही थीं, पर पलकें फिर भी जरा-जरा खुली थीं । मैं नहीं जानता उन पलकों के भीतर कौन-से स्वप्न चुपचाप खेल रहे थे । मैं चुपचाप पलॅग के एक किनारे जाकर बैठ गया । तुम्हारा सारा शरीर ढँका था, केवल छाती पर केशो की वेणी लहरा रही थी और मुख-मण्डल पर आलस भरा सौन्दर्य । बड़ी देर तक चुपचाप बैठा देखता रह गया—शायद अपने आप तुम्हारी नींद टूट जाय । पर तुम तो एक बार कॉंपी भी नही । केवल पलकें एक बार हिल उठी थीं और एक बार एक हाथ बाहर निकाला था, जो बाहर ही रह गया । मैंने धीरे-धीरे दो तीन बार हथेली सहलायी और फिर न जाने क्यों, पैरों के पास से शाल नीचे को खीचने लगा—धीरे धीरे—एक बार खींचता और फिर तुम्हारे मुख की ओर देख लेता । याद आता है, अधर एक बार हिल उठे थे—सुधा में नहाये हुए गुलाब की पतली-पतली पंखुरियों से अधर । यह कैसा आह्वान था केसर रानी ! मैं अपने को सँभाल न सका—धीरे से झुककर चूम लिया । पहले प्यार का यह पहला चुम्बन कल्पना से भी कोमल, प्रकाश से भी स्वच्छ और लावण्य से भी मधुर । मगर वह मदिरा की पहली बूँद थी, जिसे एक बार देखकर होंठों से लगाने को जो चाहता, होंठों से लगाकर पी जाने की तबीयत होती और एक बार पीकर अघाकर पीने का उत्साह होता ।

मदिरा, होंठों में भिदी रहनेवाली मदिरा, आँखों मे छलकती रहनेवाली मदिरा, और यौवन के रग-रग में निरन्तर बहती रहनेवाली मदिरा—मैं पागल हो उठा केसर रानी !, केसर रानी ! मैं पागल हो उठा। जवानी वह है जिसमें बिना पिये नशा रहे। नशा वह है, जो हमारी सारी चेतना को—हमारे सारे आत्म-आह्कार को—हमारे सारे अस्तित्व को डुबोकर, हमे पाप और पुण्य से अलग एक नयी दुनिया में स्थापित कर दे !

तुम्हे जगाकर—तुम्हें जगाकर देवि ! मुझे इसी नयी दुनिया में ले चलता था ! एक-दो-तीन······यह मेरे चुम्बनों का उन्माद था ! तुमने करवट ली, अँगड़ाइयाँ लीं ! जैसे सौन्दर्य जाग पड़ा हो। मेरे अङ्ग-अङ्ग मे मरोर उठने लगी। यौवन सचेत हुआ—अधखुली आँखों का नशा हटा। यह ज्ञान की चेतना थी—तुम्हारे पागल सौन्दर्य के ज्ञान की। मैंने हाथ उठाकर कलाइयो को धीरे से दबाया और फिर—तबतक तुम्हारी आँखें खुल गयी।

ऊपर जो लहर उठती ही जा रही हो, वही जैसे मूल कट जाने से अकस्मात् ही गिर पड़ो हो। यह लज्जा का आवरण था। तुम उठ बैठीं, आँचल, घूँघट, परिधान—सब—सभी एक साथ ही ठीक करते हुए। मै बैठा ही रहा, तुम्हारी लाल उँगलियाँ मेरे हाथ ही मे थीं।

इसके वाद······?

इसके वाद ? इसके वाद जो कुछ हुआ उसे तुम स्वप्न में देख रही हो, पर मुझे तो ये जागृत अवस्था में भी घेरे रहते हैं। मैं चणभर को भी अपने को इन घटनाओं से अलग नहीं पाता। शव से लिपटे रहनेवाले क़फ़न की तरह जीवन में मृत्यु की तरह ये लिपटे हुए हैं। और क्या रानी, मुझे याद आती है न किस तरह रात से ही—उस आलोक-माला में भी मेरे हृदय में शङ्काओं की तमिस्रा उमड़ने लगी। तुम्हारी सहज लज्जा—सुहाग रात की अमूल्य निधि—यौवन के सबसे कोमल वरदान और रमणी के सबसे अतुल सौन्दर्य को मैंने क्या समझा ? और क्या समझा मैंने अपने को उस काली रजनी मे ?

सन्देह—वह काला राक्षस—जिसको देह नही है, कैसा भीषण दानव है ! सारी रात मै इससे लड़ता रहा।

रोग का है उपचार ;
पाप का भी परिहार ;
है अदेह सन्देह, नहीं है इसका कुछ संस्कार !
हृदय की है यह दुर्वल हार !!

तो केसर रानी ! सन्देह का यह अदेह-दानव सारी रात रुलाता रहा। हार—सचमुच हृदय की यह दुर्वल हार थी।

इसकी आग इस जीवन को रह रहकर स्पर्श कर लेती है और मैं विकल हो उठता हूँ।

लेकिन फिर भी इस अवशेष को पालने के लिये भी तो कुछ चाहिये।

अपने वर्षों के बटोरे हुए अग्नि-कणों से आज जीवन की अन्तिम लालसाओं की बेलि सींच रहा हूँ। अगर तुम्हारी स्मृति की मदिरा पागल-प्राणों को निरन्तर तिरोहित न किये रहती तो इस हार का प्रायश्चित्त भी तो न होता और न होता अन्तिम लालसाओं का यह पागलपन! मैं अब अपनी इस अन्तिम लालसा को देखकर हँस पड़ता हूँ—मेरा एक बार तुम्हें पाकर प्यार करने को जी चाहता है। इस राज़ को दिल मे छिपाकर मै कैसे रखूँ? कैसे रखूँ प्राणो के सारे तारों—उन तारो के सारे स्वरों को आन्दोलित कर देने वाली इस आँधी को हृदय में छिपाकर? इसके स्पर्श से ही मैं नदी के तट पर ठीक पानी से लगे हुए शैवाल-बेलिकी तरह लहरों के कम्पन से काँप उठता हूँ। तुम हँसोगी—मेरी अन्तिम लालसा..., मैं जानता हूँ इसे। मै यह भी जानता हूँ कि अब तुम्हारे शरीर को—देव-पूजा के उस पवित्र निर्माल्य को मुझे—मुझ पापी को—छूने का कोई अधिकार नहीं है। फिर भी ममताएँ मुझे एक तट पर नहीं पड़ी रहने देती। अगर मेरे हृदय की रानी पूछती

हैं कि अब इन लालसाओं की सार्थकता ? तो मैं इसका भी उत्तर नहीं जानता। इसका उत्तर वही दें, वही मेरे हृदय की रानी।

और सार्थकता ? अनन्त दूर तक विधवा के दुर्भाग्य की तरह फैली हुई सैकत-राशि के दलित और अचलित वक्षस्थल के निरन्तर खोलकर पड़े रहने में क्या सार्थकता है ? परियों के बिखरे हुए चाँदी के चुम्बनों की भाँति अनन्त तारात्रों के निकलने और फिर तुच्छ के वैभव की तरह रात भर चमक कर अस्त हो जाने में क्या सार्थकता है ? युवती की लालसा की तरह पतिङ्गों के प्यार के लिये आने और लपटों के एक आलिङ्गन के साथ ही जलकर भस्म हो जाने में क्या सार्थकता है ? और आज भी तुम्हारे प्यार की उस वेलि को निरन्तर आँसुओ से सींच-सींच कर हरी करते रहने के प्रयास में क्या सार्थकता है ? इसे तुम—इसे तुम्ही जानो केसर रानी, इसे मैं नही जानता, इसे मैं नही जान सकता। पर सच तो यह है कि मैं इस समय यह भी नहीं जानता कि मुझे क्या लिखना चाहिये, जैसे कोई बात लिखना चाहता हूँ, पर लिख नहीं सक रहा हूँ। मैं क्या लिखना चाहता हूँ, क्या तुम जानती हो केसर रानी ?

तुम्हारा वही—
अभागा प्राण

दिल्ली,

बृहस्पतिवार,

८ बजे प्रातःकाल

चम्पा बीबी,

अभी सोकर उठी हूँ, फिर भी आँखो में नींद भरी हुई है। मेरी लाल-लाल आँखें इस समय देख लो तो तड़ातड़ चपतें लगा दो। और लल्लू तो शायद देखकर डर ही जाय। अजी बड़ा डरपोक है तुम्हारा लड़का। वे तो इतने साहसी और उनका लड़का इतना कायर। क्या चम्पा बीबी कहीं·····, आँखें तरेर रही हो न, मैं डरती नहीं, मैं जानती हूँ, तुम्हारी सोने की उँगलियाँ मेरे गालों पर पहुँचते-पहुँचते तुम्हारे होंठों पर मुसकिराहट उत्पन्न कर देती हैं और तुम्हारा साहस कुरुक्षेत्र के पहले दिन का अर्जुन बन जाता है। लेकिन वहाँ वह नन्द के लाला मोहन नहीं हैं बीबी, जो अपने ही आत्मीय का खून करने की सलाह दें। तुम्हारे वे तो मेरे खिलाफ चढ़ी हुई तुम्हारी भौंहों की चोट

स्वयं खा लेंगे और गालियो के लिये खुले हुए तुम्हारे होंठ अपने चुम्बनों से सी देंगे। वे तो इस कलियुगी मोहन के अनुयायी हैं न, जो मारने को नहो, मरने को महत्त्व देता है। वे कभी मुझे मारने देंगे !

लेकिन बीबी, तुम भले ही मुझे न मारो, मैं अपने आप मर रही हूँ। मेरी भावनाएँ ही मुझे मार रही हैं। और मैं रोने भी नहीं पाती।

पिछली रात की बात है, विनोदिनी का विवाह हो गया। तुम तो आयीं नहीं। सच कहती हूँ, विनोदिनी ने इसके लिये बहुत दुख माना। कहती थीं, मैंने निमंत्रण के अतिरिक्त चम्पा देवी के पास अलग से दो चिट्ठियाँ और भी भेजी थी। वास्तव में क्या उसने भेजी थी चम्पा ? तव तुम्हारा न आना उसे कैसे न खले ! तुमने कोई उत्तर भी न दिया। लेकिन विनोदिनी तो तुम जानती हो, कितनी अजब लड़की है। तुम्हारे प्रति उसकी कैसी स्नेह भरी भावनाएँ हैं। इसे भी तुम जानती ही हो। तुम्हारे न आने पर जब कई सहेलियों ने उससे इसका कारण पूछा तो उसने कह दिया, "न आ सकी होंगी चम्पा बीबी, कोई अड़चन आ गयी होगी। लल्लू ही बीमार हो गया हो अथवा वे ही कोई खुराफात लेकर सरकार से भिड़ गये हो। अन्यथा चम्पा बीबी न आतीं ? क्यो निल्लो ?

मैंने उससे कह तो दिया कि अवश्य कोई ऐसी ही बात आ

गयी होगी। पर मैं तुमसे पूछती हूँ आजकल तुम ऐसी शरारत क्यों करने लगी हो? चिट्ठी पर चिट्ठी हड़प जाना तुम्हारे बाएँ हाथ का खेल हो रहा है। जानती हो एक साथ ही हम सब मिलकर तुम्हारा बायकाट कर दें तो क्या हो? अजी कहीं शरण न मिलेगी श्रीमती चम्पा रानी। श्रीमतीजी का एक भी आर्डिनेन्स काम न आयेगा, समझीं?

हाँ, तो कह रही थी विनोदिनी के व्याह की बात। तुम न आयीं, इसलिये मैं भी कुछ उदास थी ही। लेकिन एक नया मेहमान आया था चम्पा। वही जिसका फोटो तुम्हारे पास चला गया है। अभी वे दिल्ली मे ही ठहरे थे। विनोदिनी की माँ से कहकर उन्हे भी निमंत्रित करवा लिया था और उनके आने मे सन्देह न रह जाय इसलिये विनोदिनी से भी एक प्राइवेट पत्र अलग से लिखवा दिया था जिसमें उस शोख़ लड़की ने यह भी लिख डाला था कि "नीलम देवी की ओर से भी।" मुझे निश्चय था कि वे आयेंगे चम्पा और वे वास्तव में आये।

विनोदिनी के पिता ने बिल्कुल नये ढंग से शादी की। व्यर्थ का साज-सामान कुछ भी नहीं। आर्य-समाज के केवल दस-बारह सज्जन मौजूद थे और थी हमारे कालेज की १५–२० लड़कियाँ। हम सब ने उसे बधाइयाँ दीं। उसके पतिदेव कल-

कत्ता यूनिवर्सिटी के एम ए. फाइनल के छात्र हैं, देखने में बड़े भोले-भाले; ललाट पर तेज और आँखों मे आभा। लम्बे बदन के पतले-से युवक हैं और बिल्कुल खद्दर पोश, शरीर गोरा है, एंग्लो-इंडियनों जैसा। तुम्हे याद है मिस रूबी का वह भाई जिसने एम. ए. मे उत्तीर्ण न होने के कारण आत्महत्या कर ली थी? ठीक-ठीक वैसा ही गौर वर्ण। पर वह तो रोगी जैसा मालूम पड़ता था। लेकिन ये प्रभाशङ्कर जी तो खूब स्वस्थ हैं, पतले हैं तो क्या स्वास्थ्य खूब सुन्दर हैं। बड़े ढंग से मुसकिराते है चम्पा, जब मैंने उन्हे विनोदिनी-जैसी चिर-संगिनी पाने पर उनके भाग्य को बधाई दी तो उन्होने विनोदिनी पर ज़रा से क्षण के लिये नज़र डालते हुए कहा, "धन्यवाद, क्या अभी आपका······? मुझे लज्जा आ गयी। तुम जानती हो चम्पा, शादी का नाम सुनते ही मैं काँपने लगती हूँ। लेकिन विनोदिनी का सौभाग्य चम्पा, कि उसे इतना सुन्दर सहचर मिला है। मालूम नही विनोदिनी को उनकी मुसकिराहट कितनी पसन्द है।

अब अपने उस अतिथि की ओर आती हूँ। विवाह के बाद हमलोग अपने-अपने घर लौटे। आजकल अपने घर पर मैं ५—६ दिनों से अकेली हूँ। पिताजी दौरे पर गये हुए हैं भैया भी उन्हीं के साथ हैं और राज्यश्री सैर-सपाटे से भला कब चूकती है? माँ आज दो महीनो से कानपुर मे है। घर में

नौकर-चाकर जरूर है, मगर एक प्रकार से मैं अकेली ही हूँ। अभी तक तो विनोदिनी से प्रतिदिन शतरंज चलती थी, मगर अब तो उसे अपने असली राजा से जीवन की बाज़ी खेलनी है, अब वह काठ के फरज़ी बादशाह से बाज़ी क्यो लड़ाये। इस प्रकार घर में अकेली रहने पर जी में हुआ क्यों न उन्हे ही एक घण्टे के लिये मनोरंजन के लिये निमंत्रित करूँ? शादी की सारी विधियाँ समाप्त होते ही ज्यो ही वे चलने लगे कि मैंने कहा—

"आप क्या आधे घण्टे के लिये मेरे यहाँ तशरीफ ले चल सकते है?"

उन्होने अपनी कलाई पर तेज़ी से नजर डाली और कह उठे,—"ओह! साढ़े आठ! मुझे जरा पैलेस टाकी जाना है। गावों का कौन किश्चियाना है।"

"अगर उसे कल देख लें?"

"कल? कल सवेरे ही की गाड़ी से तो मैं रवाना हो जाऊँगा।"

"लेकिन खेल तो साढ़े नौ बजे प्रारम्भ होगा तो फिर अभी से वहाँ जाने से क्या लाभ?"

"और बिना लाभ के कोई भी काम न किया जाय, क्यों?"

"नही, मैं तो यही कह रही थी कि आप क्षण भर विश्राम कर लेने के बाद वहाँ जाते तो······"

"तो क्या आप भी चलती?"

"मैं ? ना; मैं नहीं चल सकती, आजकल मैं घर पर बिलकुल अकेली हूँ।"

"ऐसा ?"

"बीवी जी अभी और कितनी देर है ?" इतने ही मे ड्राइवर आ पहुँचा।

"बस, बस, चलती ही हूँ।" ड्राइवर चला गया, मैंने कहा, "तो आइये !"

× × ×

खेल देखकर लौटे तो गाड़ी में उन्होने कहा, "प्रेम के लिये एक राज्य का परित्याग !" उस समय मेरी आँखों में आँसू थे। "नीलम देवी, प्रेम के लिये एक साम्राज्य का परित्याग !"❀

मेरी आँखों के आँसू ढुलक चले। तब मोटर दरवाजे पर आकर रुक चुकी थी। हम लोग कमरे में पहुँचे। कमरे मे उस समय एक ही बत्ती जल रही थी। पहुँचते ही मैंने दो बत्तियाँ खोल दीं।

"नीलम ! नीलम देवी।" वे चंचल हो उठे। नीलम देवी, ये आँसू क्यों ?"

आँसुओं में से ही मैंने मुसकिराने का प्रयत्न करते हुए कहा,

❀ स्वीडेन की महारानी क्रिश्चियाना ने प्रेम में पड़कर राजसिंहासन छोड़ दिया था।

"कुछ भी नहीं। मेरे दिल मे यों ही करुणा उमड़ आयी थी।"

इसके बाद? इसके बाद क्या कहूँ चम्पा रानी, क्या हुआ। इसके बाद की घटना जीवन के लिये, इस जीवन के लिये बिलकुल ही नयी घटना है। रात के दो बज रहे थे, हम दोनो अब भी जाग रहे थे। हमलोगों की बातें समाप्त नहीं होती थीं। आँखों में नींद नहीं थी। उन्होने बताया उन्हे टेनिस खूब पसन्द है। और वे चाहते हैं कि भारतीय रमणियो के भी बाल फ्रेंच कटके कटे हुए हों। पावों तक लटकने वाली केश-राशि उन्हे कम पसन्द हैं। उन्होंने बताया, पत्नी अगर मुसकिराकर स्वागत न कर सके, पति के ताल पर उसमे अगर स्वर भरने की चञ्चलता न हो सके, तो वैवाहिक जीवन ही व्यर्थ हो जाता है—पुरुष का जीवन ही भार हो जाता है। उन्होंने बताया पुरुष का काम है संसार के नग्न-सत्यो के बीच निरन्तर कर्मोद्यम में लगा रहकर कठोर परिस्थितियों को विश्व के अनुकूल बनाना और कामिनी केवल इस वीर संघर्ष पर एक कृपा-पूर्ण नज़र फेंक दे, अधरों पर एक नन्हीं सी प्रशंसा की स्निग्ध मुसकिराहट ला दे। पुरुष सत्य होकर रहे और नारी स्वप्न होकर और इस प्रकार दोनों मिलकर एक ऐसे अस्तित्व की सृष्टि कर डालें जो सत्य की तरह कठोर और स्वप्न को तरह सुन्दर हो। सत्य हमें कर्मोद्यम की ओर संकेत करेगा और स्वप्न हमारी क्रान्तियों के बीच हमें आश्वासन देगा।

उन्होंने बताया—नारी केवल खेलने की वस्तु है, उसका सारा अस्तित्व उसका सारा सौन्दर्य, उसकी स्निग्ध हँसी, उसका मोहक अभिनय, उसकी चंचल चितवन—यह सब—यह सब केवल पुरुष के खेलने के लिये हैं। नारी का यह रूप आज भौतिक कर डाला गया है, वह आज संसार के भौतिक प्रश्नो को लेकर स्वयं भी उलझ पड़ी है और इस संघर्ष मे जो परिवर्तन हो रहे हैं, उनमे वह अपना वास्तविक रूप खोती जा रही है। नारी का यह वर्तमान उत्थान वास्तव मे उसका पतन है; लेकिन फिर भी इसे उत्थान समझने की भूल, इस भ्रान्ति के कारण हो रही है कि हमने समाज को दो वर्गों मे विभाजित कर डाला है—पुरुष और नारी वर्ग मे। उन्होंने बताया—यही तो भ्रान्ति है, जो संघर्ष के मूल में है। वास्तव में मनुष्य का समाज दो वर्गों से नहीं, दो अंगों से बना है—पुरुष और नारी अङ्गो से। और यही दोनो अङ्ग मिलकर—अभेद्य रूप से मिलकर दो अधूरों को एक सम्पूर्ण कर डालते हैं। अर्द्धनारीश्वर भगवान की कल्पना और क्या है? एक ही व्यक्ति में पुरुष का पौरुष और नारी की कोमलता। पुरुष का सत्य और नारी का स्वप्न। जब से सृष्टि के इस रहस्य को ग़लत समझनेवालों ने यो कहना आरम्भ किया कि पुरुष और नारी दो वर्ग है, और उसने इन दोनों ही मे अपनी मूर्खता से समानता और असमानता का विभेद उनके गुणों और

स्वभावों को लेकर करना आरम्भ किया, तभी से ये दोनों अङ्ग अपनी सामञ्जस्य की प्रवृत्ति को खोकर संघर्ष की ओर झुके। पुरुष शक्तिशाली है, वह संसार का आदिम विजेता है, और नारी क्षीण बला, केवल कोमलाङ्गी और अधिकार के अयोग्य—यह बाते है, जिनकी उत्पत्ति हमारी पुरुप और नारी-सम्बन्धी मौलिक भ्रान्त-धारणाओ से हुई है। दोनो का यह विभेद है और स्वाभाविक है। संसार को इसकी आवश्यकता है और अगर न भी होती तो भी यह तो होता ही। यह उन दोनो में असमानता उत्पन्न करता है अवश्य, पर उन्होने बताया यही तो उपयोगिता है इस विभेद की। इसीलिये तो—इस विभेद के कारण ही तो पुरुष और नारी—दोनों ही अपूर्ण है—एक दूसरे के बिना अपूर्ण हैं। अत. मानवता की समस्या इस बात से न सुलझेगी कि दोनों ही अलग अलग से, जो उनके पास नहीं है, उसके लिये संघर्ष करे, समस्या सुलझेगी दोनो के पारस्परिक संयोग से। पुरुष पाकर नारी सपौरुष हो जायगी इस संसार के लिये और नारी पाकर पुरुष सुकोमल हो जायगा इस संसार के लिये। प्रेम और विवाह की मूल-भित्ति यही है। जब समाज नहीं था और समाज के विधान नहीं थे, तभी से पुरुष और नारी का पारस्परिक आत्म-समर्पण चला आया है, मानव-स्वभाव की इसी प्राकृतिक पुकार के उत्तर मे।

"तब तो आपके ख्याल से विवाह करना बहुत आवश्यक है।"

"बहुत आवश्यक है ? यह तो मैं नहीं कहता।"

"लेकिन स्वाभाविक है। यह तो···!"

"पर सभी स्वाभाविक बातें आवश्यक भी हो, ऐसा तो······"

"बेशक आप ऐसा नहीं कहते पर जो अस्वाभाविक है, वह भी क्या सुन्दर हो सकता है ?"

"हो सकता है नीलम देवी, वह भी सुन्दर हो सकता है।"

"अस्वाभाविक भी ?"

"अस्वाभाविक भी, आश्चर्य क्यों करती हैं आप ?"

"आश्चर्य तो मुझे बेशक हो रहा है। पर आप कहते है··।"

"मै कहता हूँ, इससे आपके आश्चर्य को मर नहीं जाना चाहिये, लेकिन मैं ठीक कह रहा हूँ और जीवन मे ऐसी भी कितनी घटनाएँ अपने आप हो जायेंगी जो अस्वाभाविक होते हुए भी सुन्दर होंगी, उस समय आप स्वयं ही इस बात को समझ सकेंगी।

इस प्रकार की कितनी ही बातें वे करते रहे। काफी देर हो चुकी थी। उन्होने कहा—"क्षमा कीजियेगा, बड़ी देर तक मैंने आपकी नींद न खराब की।"

"लेकिन मैं तो आपको धन्यवाद देती हूँ, आपने कितनी ही ऐसी बातें कीं हैं, जिनका हमारे जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध है।"

"और शायद विवाह भी उन्हीं बातों में से एक है, क्यों ?"

"इस बात पर मैंने कभी भी गम्भीरता पूर्वक विचार नहीं किया ।"

"तो मैं सोचता हूँ अभी आपने विवाह नहीं किया ।"

"आप ठीक सोचते हैं ।" मेरे होंठो पर हँसी आ गयी। और कुर्सी से उठकर पलँग पर जा बैठी। उन्होंने तत्काल ही कहा, "ओह ! आप इतनी देर से तपस्या क्यों कर रही थीं ? आपको नींद आ रही है, अच्छा, अच्छा आप सोइये ।" और इधर उधर देखने लगे। और तब घड़ी ने बजाये तीन ! "बड़ी देर हो गयी नीलम देवी ! मैं तो अब ··।"

"आप तो अब क्या ? क्या आप अपने होटल में जाना चाहते है ? अगर कहीं मैनेजर ने पुलिस के हवाले कर दिया तो ?"

"तो वहाँ सिर्फ मेरी ही नींद हराम होगी, आपको तो मैं जगा जगाकर नहीं मार डालूँगा ।"

"ओहो ! आप मेरे लिये जेल में भी चले जाने को तैयार हैं ! तो व्यर्थ ही लोग कहते हैं कि भारतीय पुरुषों में 'शिवलरी' नही होती । और फिर केवल मेरी नींद के लिये ? धन्यवाद !"

वे मुसकिराये। तुम जानती हो चम्पा, इस वाचालता का रोग मुझे लड़कपन से ही लगा है। कितनी बार मैंने तुम्हारी

झिड़कियाँ सुनी हैं, इसके लिये कितनी बार विनोदिनी से झगड़ा हो गया है, इसके लिये और कितनी बार मिस मिलर ने आँखें चढ़ायी हैं इसके लिये। पर ये चम्पा, नाराज नहीं हुए इसके लिये। उनके होंठों पर हँसी आ गयी। वे उठकर मेरे पलँग के पास आकर खड़े हो गये।

"आप लेट जाइये।" कहकर मैंने दूसरा पलँग दिखा दिया। उन्होंने संकेत से कहा, कोई जरूरत नहीं है, और फिर स्पष्ट बोले, "आप सुख से सोइये, मैं पहरा दूँगा, इस समय मैं भारतीय पुरुषों की लाज रखूँगा, अपनी 'शिवलरी' दिखाऊँगा!"

मैं खिल खिलाकर हँस पड़ी। मुझे ध्यान आता है, वे गम्भीर होकर केवल मुझे देखते रह गये।

"आप पहरा क्या देंगे, क्या कोई मुझे यहाँ से उठा ले जायगा?"

"मैं हूँ नहीं?"

"और अगर आप स्वयं·····" मैंने बीच ही में जीभ काट ली। अरे; मेरे मुँह से यह क्या निकल गया? मेरा मुँह फक हो गया।

"आज के पुरुष दिल नहीं चुराया करते नीलम देवी, वे तो स्वयं लुटे हुओं में हैं। मुझे स्वयं अपनी रक्षा करनी है।"

"तब तो इस समय हम दोनों ही अनाथ हैं, कोई किसी का रक्षक नही।"

"लेकिन मुझे तो खामख्वाह अपनी अपनी शिवलरी दिखानी ही पड़ेगी!"

मुझे, चम्पारानी, मुझे लगा, इस पुरुष के जैसे मैं नज़दीक होती जा रही हूँ। कैसा सुख है इसके अङ्कों में आत्म-समर्पण कर देने का। तुम सोचोगी, एक पराये पुरुष के अङ्क में? पर एक बार तो सभी पराये ही हैं। जबतक आत्म समर्पण नही हो जाता और जब तक एक दूसरे से बँध नहीं जाते, तब तक अपना कोई नहीं, सभी तो पराये ही हैं।

"नीलम" वे मेरे निकट आ गये थे। आवाज़ धीमी थी।

"नीलम" वे मेरे और भी निकट थे। आवाज़ ऊँची थी।

"नीलम" वे मेरे सर्वथा निकट थे। आवाज़ खिची हुई।

"नीलम?—नीलम—नीलम रानी!" वे आवेग से बोलने लगे, वाणी काँप उठती थी। मेरा सारा शरीर हिल उठा। केवल पलकें न गिरीं, वे भी गिरीं।

"नीलम रानी!" सभी आवाज़ों से गिरी हुई। एक धीमा-सा स्वर। कम्पन से रहित, पर कँपा देनेवाला—इस नन्हें से निरर्थक नाम को सारे अर्थों से सजा देनेवाला।

"प्राणनाथ!"

मैं भीतर से काँप उठी। वास्तव मे यह उनका नाम है चम्पा। लेकिन हाय रे यह नाम, पहली ही बार मे इससे कितनी आत्मीयता हो जाती है! मैं लज्जित हो उठी।

वे मेरी ओर ताकते ही रह गए, "आप सुन्दर हैं नीलम देवी!" आप सुन्दर हैं। क्षमा कीजिएगा। मेरी गुस्ताखी आप ··।

यह जो पुरुष था, जो किसी नारी को एक बन्द एकान्त कमरे में रात के सूनेपन में जब कोयलों का स्वर नही बोल रहा है, जब संसार की धड़कने ही केवल इस मृत्यु लोक मे जीवित शवों की सूचना दे रही है, और जब केवल घड़ियो का डायल ही घण्टे घण्टे पर हमारे जीवन की चंचलता को जगा जाता है, तब यह पुरुष नारी के सौन्दर्य से आलोकित हो उठा है और पलके जिनमे नीद नही है, वे गिरती नहीं; और चेतनता, जिसमें ज्ञान है, आती नहीं। और तब यह पुरुष नारी के अत्यन्त निकट होकर उसकी आँखों को अपनी आँखों से निरखकर और वाणी को अपने हृदय के कम्पनों की भाषा देकर कह उठता है "नीलम देवी आप सुन्दर है।"

तो जो यह पुरुष था उससे कोई अपनी रक्षा कैसे करे, चम्पा? तुम नीलम को जो आज इतनी दूर से भी तुम्हारे चरणों के पास ही अपने को अनुभव करती है कैसे बचाती। कैसे बचातीं चम्पा बीबी?

"नीलम देवी।"

"आप कुछ बोलते क्यों नहीं ?"

"कभी ऐसा भी क्या नहीं होता कि वाणी अर्थ न प्रकट करे।"

मैं चुप थी।

"मैं एक बात कहना चाहता हूँ।"

मैंने अपनी आँखें उठायीं—जिनका अर्थ था ! "कहते क्यों नहीं ?"

उन्होंने मेरे कन्धे पर हाथ रख दिया, मुझे जैसे धक से हो गया। मै उठ खड़ी हुई।

"जीवन भर में आज ही एक सच्चा साथी पा सका हूँ। रूप मन्दिर मे जिस दिन प्रेम-योगिनी देखते-देखते, मैंने आपकी लड़कपन-भरो जवानी देखी थी, उसी दिन से जी न जाने कैसा-सा है। न जाने कैसा-सा अनुभव करता हूँ, लेकिन नीला, मेरी नसो में इस समय तुम्हीं बह रही हो, मेरी साँसों में इस समय तुम्हीं धड़क रही हो और मेरी पुतलियों में इस समय तुम्ही बस रही हो।"

मेरा हाथ उठाकर वे मुँह तक ले गये और कहा—"निल्लो रानी।"

वे रुक न सके—मेरे उत्तर के लिये वे रुक न सके। चूम लिया उन्होंने मेरा हाथ। और इसके बाद अपनी ओर अक-

स्मात् खींचकर अपने बाएँ हाथ से उन्होंने मुझे झुकाकर मेरे वक्षस्थल के ऊपर और गले के नीचे वाले बीच के भाग का एक गम्भीर चुम्बन लिया और·····मैं कुछ न बोली—मैं कुछ भी न बोल सकी चम्पा, उस पुरुष के स्पर्श से ही मैं विभ्रम में पड़ गयी थी। आज भी वह स्पर्श याद आते ही······हायरी मैं!

और इसके बाद? इसके बाद मेरे होंठों के आत्मसमर्पण की कहानी है। इन्होंने झुक कर मेरा······चूम लिया और मैं सिहर उठी।

"नीलम रानी।" देर के बाद उन प्रकम्पित स्पन्दनों को भाषा मिली। मेरी आँखें झुक गयी थीं। मैंने निरर्थक भाव से ताका—मैं भाव-विहीन हो रही थी।

और तब तक कूक उठी कोयल। वे झुक रहे थे कि कूक उठी कोयल। यह था चेतना का—मेरी चेतना का जागरण। मैं झटके से उनके अङ्कों से अलग निकल गयी।

"प्रणनाथ जी!" मैं चौंक उठी थी, "आप होश में हैं प्रणनाथ जी! ओह!"

मैं काँप रही थी—क्रोध से। वे काँप रहे थे, लज्जा से। मुझे अपने पर प्रतारणा आयी और उन्हे लज्जा।

"यही—केवल यही एक कमजोरी मुझ में है नीलम!" मैं तत्काल बहुत आगे बढ़ जाना चाहता हूँ। मैं पतित हूँ, परन्तु

आप विश्वास रखिये मैं इतना पतित नहीं कि सावधान करने पर भी न चेत जाऊँ।"

मेरी आँखों में जल भर आये थे। न जाने क्यों मेरा कलेजा धक धक कर रहा था। मुझे याद आयीं मेरी माँ—मेरी राज्यश्री! आज अगर वे घर में होती! मेरा सिर घूम गया। मैं पलँग पर गिर पड़ी।

"क्षमा चाहता हूँ रानी जी।" उनके गम्भीर स्वर में पश्चात्ताप का अवरुद्ध कण्ठ बोल रहा था, "क्षमा चाहता हूँ।"

आँसू छलछला कर गिर पड़े। मैं सिसकने लगी। इस समय भी जब मैं यह पत्र लिख रही हूँ, मेरी आँखों में आँसू है चम्पा, और मैं नहीं समझ पा रही हूँ कि उस दिन की इस घटना को मैं किस रूप मे लूँ। मेरा सिसकना देख कर वे उद्वेलित हो उठे और कहने लगे—"यह अपराध वास्तव में बहुत बड़ा है नीलम देवी, वास्तव में इसका प्रायश्चित्त नहीं हो सकता—नहीं हो सकता।"

वे आत्म-प्रतारणा से कटे जा रहे थे। उन्होंने अपना सिर नीचा कर लिया और कुर्सी पर बैठ गये। क्षणभर में ही अपना मुँह जो उन्होंने ऊपर उठाया तो आँसू की दो बूँदें टपक पड़ीं। वे मेरी ओर शून्य-दृष्टि से ताकने लगे और फिर क्षीण स्वर मे कहा—"नीलम!"

मैंने नज़र उठायी, पर वे कुछ बोल न सके। पर बोलती थीं उनकी आँखें। "नीलम देवी!" उन्होंने कहा और फिर सिसक उठे और मैं हिल उठी अपने हृदय से।

"आप इतना परिताप क्यो करते हैं? मैं तो न जाने कितने भावों के आघात से एक साथ ही रो पड़ी, पर आप धीरज क्यों खोते हैं? मैंने तो स्वयं आपको यहाँ बुलाया था।"–मैंने कहा।

"लेकिन मैं फिर यहाँ आने लायक जो न रहा। मेरा जीवन भी कितना पतित है। मैं सदैव भूल ही करता रह गया। यह मेरे जीवन की दूसरी भूल है नीलम। मैं अभी अपनी पहली ही भूल का प्रायश्चित्त न कर सका कि तब तक एक भूल और कर बैठा। इन सब भूलो का—इन सारी भूलों का—जो जीवन में एकत्र होती जा रही हैं, मैं प्रायश्चित्त कैसे कर सकूँगा—कैसे कर सकूँगा नीलम देवी!"

इतना कहकर एक साथ ही वे गम्भीर हो गये—असाधारण रूप से गम्भीर हो गये। सर्वत्र सन्नाटा था। केवल ऊपर बिजली के पंखे की सनसनाती हुई ध्वनि और भीतर कलेजे की धड़कन सुनाई पड़ती थी। मैं नहीं जानती मेरी आँखों से आँसुओं का उमड़ना कब बन्द हुआ और मैं कब सो गयी। न जाने कबतक सोई पड़ी रहती कि करवट बदलते समय घड़ी की आवाज़ सुनाई पड़ी और मैं उठ बैठी। उठकर देखती हूँ तो प्राणनाथजी वैसे

ही कुर्सी पर लेटे छत की ओर देख रहे हैं। और वे आँखें, आह! कितनी लाल हो गयी थीं वे। मालूम होता था, एक पल को भी वे लगी नहीं थी।

मैंने उठते ही उठते कहा, "अभी आपका प्रायश्चित्त पूरा नहीं हुआ?"

उन्होंने मुसकिराने का झूठा प्रयत्न करते हुए कहा, "बस अब थोड़ा ही बाक़ी है।"

"तब उसे भी पूरा कर डालिये" मैंने पीछे से उनके कन्धे पर हाथ रख दिया।

"लेकिन आपके मारे पूरा कर सकूँगा?" उन्होंने हाथों को वैसे ही पड़ा रहने दिया। उधर ध्यान तक न दिया।

× × × ×

चम्पारानी, बिगड़ना, खूब जी खोलकर बिगड़ना। मेरी निर्लज्जता के लिये मुझे गाली देना और मेरे पतन के लिये मुझे पीटने की धमकी। मैं सह लूँगी—मैं यह सब सह लूँगी। तुम कहोगी कोई युवती इन बातो को इतनी निर्लज्जता पूर्वक कैसे लिख सकती है। पर तुमसे कौन-सी मेरी लज्जा छिपी है? और अगर छिपाऊँ भी तो क्या तुम पसन्द करोगी? तुम यह भी पूछोगी कि इसके बाद क्या हुआ, तुम यह भी जानना चाहोगी कि हम दोनों अलग कैसे हुए—कैसी भावनाओं को लेकर। अगर तुम

जानना चाहती हो तो वह भी छिपाती नहीं हूँ वह भी बताती हूँ हम लोग अलग हुए रोते-रोते नहीं, हँसते-हँसते।

चलते-चलते उन्होंने कहा, "देखा न, मेरा प्रायश्चित्त कितना सफल हुआ? मेरा अभिशाप तो दूर ही हुआ, भगवान चाहेंगे तो वरदान भी मिलेगा।"

"लेकिन आपने 'शिवलरी' तो खूब दिखायी!"

× × × ×

यह पत्र यहीं समाप्त करती हूँ। जब लिखने बैठी थी, तो सोचती थी क्या लिखूँगी, पर

"लिखते रुक्का, लिख गये दफ्तर,
शौक ने बात क्या बढ़ायी है।"

तुमने मेरी सारी बातें सुन लीं, अब जरा लिखना तो चम्पा बीबी अगर उनके साथ ब्याह कर लूँ तो कैसा रहे? जीवन का एक संगी तो चाहिये ही। और तुम जानती ही हो, मेरी माँ इससे कितनी सुखी होंगी। वे कितने दिनों से मेरे भालपर सुहाग की बिन्दी देखने को तरस रही है। उनके प्रति भी तो अपना कुछ कर्त्तव्य है। तो जरा लिखना तो, अगर ब्याह कर लूँ तो कैसा रहे।

केवल तुम्हारी ही
'निझो'

पुनश्चः—इस पत्र की निर्लज्जता के लिये क्षमा कर देना दीदी, हाथ जोड़ती हूँ।

प्रातःकाल

मैं नहीं जानती कि व्याह कर लो तो कैसा रहे। मुझसे क्या पूछती है कि 'व्याह कर लूँ तो कैसा रहे?" पगली कहीं की व्याह करने के लिये इतनी बेकली, इतना मतवालापन! सारी शिक्षा-दीक्षा, सारा ज्ञान-गुमान और सारी संस्कृति और सदाचार को पहले लात मारकर रसातल भेज दो और किसी के बाहुपाशों में अपने अङ्गों को मरोड़कर डाल दो और तब पूछने लगो कि व्याह कर लूँ तो कैसा रहे? मैं कहती हूँ बहुत अच्छा रहे! पुरुष भी क्या समझेंगे कि आजकल की लड़कियाँ कैसी शोख होती है! एक साथ ही सारी लज्जा पी जाओ और समर्पित कर दो अपने होंठो को किसी को और तब पूछो कि व्याह कर लूँ तो कैसा रहे? अरी ओ निर्लज्ज नीला, जैसा पत्र तुमने मुझे अभी भेजा है और जैसी घटनाओं का ज़िक्र

तुमने इसमें किया है। अगर वह सच है तो·····, क्या होगया है तुझे री ! सौन्दर्य और यौवन का ऐसा भीषण आत्म-समर्पण !! पगली कहीं की तुझे हो क्या गया है ?

प्रेम अन्धा होता है बीबी, इसे मैं भी जानती हूँ। मगर यह तो केवल वासना है री, इसे तू प्रेम का नाम क्यों देती है ? प्रेम क्या केवल स्पर्श का भूखा रहता है ? उस देवता का स्थान त्वचा के स्पर्श के भीतर रहता है; उसे वाणी नहीं, आँखों की नीरवता प्रकट करती है और यह जो वासना है, तुम उसमें ही छम-छुम हो रही हो ! वासना, तत्काल स्पर्श की भूखी वासना, त्वचा और वाह्य अवयवो से खेलनेवाली वासना, चुम्बनों और आलिङ्गनों के लिये विकल बनी रहनेवाली वासना, इस अभागिनी के अस्तित्व को तू प्यार का—भगवान के सबसे कोमल मङ्गलमय अवदान प्रेम का नाम क्यो देती है ? कर लो आवेश में आकर चुम्बनो और आलिगनों का आदान प्रदान और खेल लो जवानी के पागलपन भरे खेल, किन्तु ईश्वर के नाम पर उसे प्रेम कहकर न पुकारो। जीवन, यौवन और सौन्दर्य के प्रति ऐसा भीषण खेल ! और ऐसा खेल खेलनेवाली तू है री नीला ?

तू कहेगी मैं इस समय आवेश मे आकर लिख रही हूँ। आवेश तो है ही। एक अपरिचित पुरुष के साथ तुम्हारे आत्म-समर्पण का यह अभिनय भी मुझे आवेश न दिलायेगा क्या री ?

ब्याह कुछ हँसी खेल नहीं है नीला। यह एक पवित्र बन्धन है। इसकी सीमा केवल होंठों और आँखों तक ही नहीं है, यह शरीर के भीतर आत्मा तक पहुँचनेवाला बन्धन है। यह वह रेशम की डोरी है जो सोने की शृङ्खला से भी कठोर है। यह जावन में एक घटना नहीं है, जीवन की सारी घटनाएँ इसमें हैं। और फिर भी तू एक अपरिचित पुरुष—मैं उसे अपरिचित ही कहती हूँ नोला—के चरणों पर निछावर होने को मर रही है! अगर तेरी जैसी लड़की के लिये वह योग्य सिद्ध न हुआ तो? तो क्या तुझे अपनो इस आतुरता के लिये पछतावा नहीं होगा री?

और फिर इस सवाल का एक दूसरा पहलू भी है निल्लो रानी, तुम्हारी ही जैसो स्त्रियो ने स्त्री-जाति को पुरुषों का गुलाम बनाया है। इसी से तो वह पुरुष कहता है स्त्रियाँ केवल पुरुषों के खेलने के लिये बनी हैं। नारी के मातृ-रूप को कल्पना कदाचित् उस पुरुष ने कभी की ही नहीं—उस मातृ-रूप की जो पुरुषों की सेवा, पुरुषों की श्रद्धाञ्जलि और पुरुषों के समस्त मान और सम्मान के लिये है। तुमने क्या उस पुरुष के इस रिमार्क पर कुछ भी आपत्ति की? पर तुम्हें तो कभी हँसते-हँसते और कभी रोते-रोते अपना आत्म-समर्पण ही करने से अवकाश नहीं था। तुम समझती हो कि इस अभिनय से मुझे बड़ा कुतूहल

हुआ होगा ? पर मैं तो इससे घृणा करती हूँ नीला, क्षमा करना तुम मेरी स्पष्टवादिता को।

और यह पुरुष ? तुमने कितना पहचाना इसे ? तुम्हारी शान के खिलाफ मैं कुछ भी न कहूँगी, पर किसी युवती और सुशिक्षिता बालिका के साथ एकान्त में जो इस प्रकार का व्यवहार कर बैठे, उसे मैं तो पसन्द नहीं करती। पुरुष यदि इतना भी आत्म-बल न दिखा सके, उसमे यदि इस अंश में भी आत्म-नियन्त्रण की क्षमता न हो तो उसके साथ किसी भली लड़की का निर्वाह तो नहीं हो सकता नीला—कभी नहीं हो सकता। प्रेम की दुनिया मे इतनी उतावली से कूद पड़नेवाले पुरुष उस प्रेम की रक्षा कभी नहीं कर सकते, इसे मैं खूब जानती हूँ।

और तुमने ? तुम्हारे व्यवहार पर तो मुझे आश्चर्य और दया आती है। पुरुषों के प्रति तुम्हारे मनोभाव अबतक जैसे बने रहे हैं, उनसे तो तुम्हारा यह व्यवहार सर्वथा विपरीत हुआ है। तुम अबतक जैसी भावनाएँ पालती रही हो, उनकी ऐसी अभिव्यक्ति तो नहीं होनी चाहिये जैसा कि तुमने इस पत्र मे लिखा है। तुमने क्या सच ही लिखा है नीला ? और अगर सच ही हो, तो मेरी बातों के लिये बुरा न मानना। विनोदिनी कहा करती थीं न कि नारी को किसी और खतरे की अपेक्षा प्रशंसा से अपनी रक्षा करने में सदैव सावधान रहना चाहिये। प्रशंसा-

उसके सौन्दर्य की, उसकी आँखो की—उसकी गति की, और उसके मुसकान की प्रशंसा—नारी के हृदय के मर्म-स्थल पर आघात करती है। प्रशंसा से ही नारी सबसे अधिक कमज़ोर हो जाती है और नारी जाति का दुर्भाग्य है नीला, कि धूर्त पुरुषों को हमारी इस कमज़ोरी का पता बहुत पहले से लग चुका है। यह तुझे ही नहीं, हमारे समाज के प्रत्येक प्राणी को जान लेना चाहिये। इसे तुम क्या नही जानतीं कि तुम्हारी माँ की तरह ही मैं भी तुम्हारे दमकते हुए भाल पर सुहाग की बिन्दी देखने को उत्सुक हूँ। पर कलङ्क का टीका लगाने का प्रयत्न न कर नीला।

बस अब नही लिखूँगी। तुम्हे नाराज़ कर देने के लिये क्या इतना ही काफी नही है?

लल्लू के नन्हे-नन्हे हाथ तुम्हें यहीं से प्रणाम करने के लिये उठ रहे है, आशीर्वाद दो निझो।

तुम्हारी ही

चम्पा।

आगरा

३ बजे दिन

मेरी लाड़ली निझो रानी,

आज सबेरे ही तुम्हें एक पत्र डाल चुकी हूँ, मैं क्षमा माँगती हूँ तुमसे, तुम उसपर बिगड़ना मत। उसमें मैंने कितनी ही कठोर बातें लिख डाली हैं। तुम्हारी भावुकता को जानती हूँ मैं, तुम उस पत्र को पढ़कर रो पड़ी होगी, लेकिन अब तो हाथ से छूट चुका है तीर। तुम्हे मेरी शपथ, तुम ऐसा समझना कि वह पत्र मिला ही नहीं तुम्हें। उस पत्र को पढ़ते-पढ़ते अगर तुम्हारी बड़ी-बड़ी आँखों में आँसू आ गये हों, तो शपथ तुम्हें मेरी, एक बार तुम मुसकिरा दो। मैं बलैया लेती हूँ, एक बार हँस दो नीला रानी।

लेकिन एक बात बुरा न मानना। इस तरह ज्ञान को खो नहीं देना चाहिये। न जाने प्राणनाथजी कैसे निकल जायें।

पुरुष बड़े प्रवञ्चक होते हैं निल्लो, इन पर कभी विश्वास न करो। पुरुष मानव तभी तक रहते हैं, जब तक वे वासना से दूर रहते हैं, और वासना के उन्माद में तो वे दानव हो जाते हैं। उस समय वे सब कुछ कर सकते हैं। पर हम स्त्रियाँ यदि इतनी जल्दी क़ाबू में आ जायँ तो क्या परिणाम होगा इसका? तूने सोचा है कभी?

अगर तुमने प्राणनाथजी को ठीक ही समझा है, तो भगवान तुम्हारी प्रेम-बेलि सींचे, पर इस प्रकार फिल्मों की अभिनेत्रियों की तरह क्षणभर मे अङ्क-शायिनी बन जाने की क्या ज़रूरत थी? यह भावुकता अच्छी न हुई। जीवन के कथानक में इतनी जल्दी परिणाम पर पहुँच जाना रोचक नही हुआ करता। अपने को रोक रखने में ही तुम्हारी मज़बूती थी। इसीमें तुम्हारा आकर्षण होता। पर जाने दो इस प्रसंग को यहीं छोड़ती हूँ, लेकिन इतना जरूर कहूँगी कि चाल अब जरा धीमी कर दो। इस प्रकार की आतुरता से रमणियाँ अपना सारा महत्व खो बैठती हैं नीला! प्रेम की पुकार सुनती रहो और सुनती रहो प्रेम के लिये सर्वस्व उत्सर्ग करने की भावना रखनेवालों के मधुर आह्वान, किन्तु साव-धान, सभी बातों पर विश्वास कभी नही किया जाता। मैं यह नहीं कहती कि प्रेम के प्रस्ताव पर ध्यान ही न दो। नहीं निल्लो बहन, ध्यान ज़रूर दो, पर कितना? केवल इतना ही कि

एक बार प्रस्तावक की ओर मुसकिराते हुए सिर्फ ताक भर दो, बस इसके आगे न बढ़ो। इसके आगे सर्वनाश का पथ है, पापो से भरा हुआ सर्वनाश का पथ। तू शायद जानती नहीं कि पुरुष बड़े अनोखे जन्तु हैं। हम स्त्रियाँ तो प्रेम के लिये अपना सब कुछ निछावर कर देती हैं, पर जिस पुरुष से प्रेम करो, जिसकी रोनी सूरत तुम्हारे हृदय में ऐसी दया उपजा दे कि तुम उसे प्यार करने लगो, वही प्यार पा लेने पर तुम्हे हेठी नजर से देखने लगता है। वह सोचता है, यह नारी अवश्य पापिनी है—पतिता है—चरित्र भ्रष्टा है। जिसके लिये नारी अपना सर्वस्व निछावर कर डाले, वही पुरुष उसे ऐसी पतिता समझे! पुरुष जाति की बुद्धि के इस संक्रामक पागलपन का इलाज आज तक न हो सका। प्रेम के मामले में पुरुष कभी अपने उत्तरदायित्व का अनुभव नहीं करता। स्वार्थ के बने हुए ये जन्तु प्रेम के मामले में सदा मूर्खता किया करते हैं। कर्म-क्षेत्र में पसीना बहाकर काम करनेवाली पशुता को कोमल भावनाओं से क्या काम? और विचार कर देखो नीला तो स्पष्ट-सा दिखाई पड़ेगा कि पुरुष का निर्माण मानवीय की अपेक्षा पाशविक तत्वों से ही अधिक हुआ है। इसीलिये सावधान करती हूँ तुम्हे। और फिर इस आतुरता से क्या मिलेगा री? कहीं कली खोलकर पराग निकाला जाता है पगली? पर तू तो ऐसा ही करना

चाहती है। एक साथ ही—एक ही नजर में सर्वस्व समर्पण! इसीलिये तो कहती हूँ कि तूने अच्छा नहीं किया नीला। लेकिन मेरा यह कहना क्या तुझे अच्छा लग रहा है। अरी दीवानी, मैं तुझे संन्यासिनी नहीं बनाना चाहती, पर इतनी जल्दी क्या पड़ी है?

× × × ×

लिल्लू की तबीयत आज दोपहर से न जाने क्यों खराब सी हो चली है। मैं इधर उसकी बीमारी के चक्कर में आ गयी हूँ। और उधर वे अबला आश्रम के उद्धार में लगे हुए हैं। उधर न जाने कौन एक देवी जी आयी हैं। जी में बड़ी कुढ़न होती है। बहन, अगर तुम वास्तव में प्राणनाथजी से विवाह ही करना चाहती हो तो पहले इस बात का पता लगा लेना कि वे सुधारक तो नहीं हैं। सुधारक पति तो एक बला हो जाता है। वह जीवन का चिरसंगी बनने में सर्वथा असमर्थ हो जाता है। उस पर तो सभी का एक समान अधिकार रहता है न, इसलिये सभी के प्रति उसे अपने कर्तव्य का पालन करना पड़ता है, फिर अलग से यह अपनी बीबी, बच्चों की फिक्र कैसे रखे?

बस करती हूँ लीला बहन। लल्लू पानी माँग रहा है।

तुम्हारी अपनी ही

चम्पा।

दिल्ली

संध्या

चम्पा बीबी,

तुम्हारे दोनों पत्र मिले। मै कहती थी न कि तुम सुनते ही मेरा कलेजा निकाल लेना चाहोगी। मगर बीबी मै तो अब उस पुरुष को प्यार करने लग गयी हूँ। इसके लिये चाहे तुम जो भी दण्ड दो, सब सह लूँगी, लेकिन जीजी तुम मुझसे उसका प्यार न छीन लो, मैं सिर्फ इतनी ही विनती करती हूँ। मैंने उसे अपना समस्त जीवन देकर भी ले लेने का निश्चय कर लिया है। एक बार अगर तुम उन्हे देख पातीं ! आँखों से जैसे मदिरा छलकी पड़ती है। आह क्या—

तुम इसे सौन्दर्य का उन्माद कह लो और चाहे यौवन का आत्म-समर्पण। परन्तु मेरी आँखें धोखा नही खा रही हैं। जब सौन्दर्य मे मादकता है, उन्माद है और आत्म-समर्पण

करने का आह्वान है तब उसपर कोई क्यों न रीझ जाये। तुम बुरा क्यों मानती हो अगर सौन्दर्य-सम्बन्धी मेरी भावनाएँ तुम्हारी ही-जैसी नहीं हैं। और फिर मानव-सौन्दर्य !

दुनिया कहती है अविकच कलियों में सौन्दर्य है, नव-विकसित पुष्पो मे सौन्दर्य है, पुष्प के विकसित होकर सौरभ लुटाकर एकान्त में मुरझा जाने में भी सौन्दर्य है। दुनिया कहती है ऊषा के लाल कपोलों पर सोने की रेखा खींच देनेवाले बाल-रवि मे सौन्दर्य है, गोधूलि-बेला के भाल पर कुंकुम छिड़कने वाले अस्तङ्गत सूर्य मे सौन्दर्य है। नववधू के स्वप्नों-से रंगीन इन्द्र-धनुष मे सौन्दर्य है, सुकोमल पलकों सो पँखुरियों में सौन्दर्य है। देवताओ की आँखो-सी झिलमिलाती हुई तारिकाओ में सौन्दर्य है, अहमन्यों-से समुद्र के भैरव गर्जन में सौन्दर्य है, मानवीय कामनाओ-सी मेघ मालाओ के बनने और बिगड़ने मे भी सौन्दर्य है। दुनिया कहती है ऐसा और दुनिया पूजती है इन्हे। पर मेरो प्यारी चम्पा रानी, क्या मानव-सौन्दर्य इनकी भी तुलना करने में असमर्थ है ? मेरा ख्याल है, इन्द्रधनुहियो का, तारिकाओं का, पुष्पों का, पुष्प-पंखुरियो का, चाँदनी का, सागर और मेघों का सौन्दर्य सिर्फ कला के लिये है—कला के शृङ्गार के लिये है। और जीवन कला से भी सुन्दर है। कला केवल जीवन की छाया-मात्र है—उसका अधूरा और अपूर्ण अनुकरण मात्र।

जीवन की उलझी हुई गुत्थियों, जीवन की तरल हँसी, जीवन का नन्हा-सा उदासीन विषाद और जीवन का पलभर का कम्पन— यह सब अकेले-ही सौ-सौ कलाओं की तुलना के लिये काफी है। कलायें आखिर मानव-स्पन्दनों की ही कहानी, मानव-स्पर्शों के सिहर के ही आख्यान तो हैं। फिर चम्पारानी, मानव सौन्दर्य इतना हीन कैसे हो गया, जो इसपर हमारा ध्यान ही न जाय? चित्रकार की तूलिका जब किसी सुन्दर चित्र को बनाकर हमारे सामने उपस्थित करती है, तब हम भीतर और बाहर से आनन्द के मारे थिरक उठती हैं, कला की मोहक छाया हमें विभ्रम में डाल देती है, पर ऐसा सुन्दर मानव जब हमारी आँखें देख लेतीं और उसकी प्रशंसा करने लगती है तब वही प्रशंसा अभिशाप बन जाती है, मानव-सौन्दर्य की वह झाँकी हमे साँप बनकर डसने लगती है। कृत्रिम कला स्वाभाविक मानवता से अधिक आदर पाने लगती है! निर्जीव चित्र सजीव जीवन से भी अधिक प्रशंसा पाने योग्य है? इसका क्या अर्थ चम्पारानी! क्या मानव सौन्दर्य इस धरातल पर केवल दलित और गर्हित होने के लिये ही आया है? शरीर के सौन्दर्य को केवल नश्वर कहकर क्यों पुकारती हो चम्पा, इसकी सार्थकता क्या केवल इतना ही है।

शत-शत प्राणो को केवल एक ही भृकुटि-संकेत से आनन्द की धारा में तिरोहित कर देनेवाली मानव-आँखों का सौन्दर्य क्या

केवल घृणा की वस्तु है, प्यार की नहीं ? कोटि-कोटि सन्तप्त-प्राणों को केवल स्पर्श से शीतल कर देने वाला मानव-हृदय का सौन्दर्य क्या केवल नश्वरता का ही उदाहरण देने के लिये बनाया गया है ? सुदूर तक लहराते हुए समुद्र के गर्व-घोष मे तो सौन्दर्य है, पर अनन्त लहरियो के अनवरत आघात पर भी अन्तर्द्वन्द्व को प्यार करने वाला मानव-हृदय क्या केवल प्रवञ्चनाओं और मायाओं का ही क्रीड़ा-स्थल समझ कर दुतकारे जाने के लिये ही है ? भगवान ने अपना सारा कवित्व, अपनी सारी चित्रकला और अपना सारा विज्ञान लगाकर जिस मानव की सृष्टि की है, वह क्या हमारी एक आलोचना से ही घृणा का पात्र बन जायगा चम्पारानी ?

दुनिया अगर मेरे रास्ते से नही जाती और अगर मै भी दुनिया के मार्ग से नहीं जाती, तो इसके लिये मैं क्या करूँ ? मुझे तो मानव-सौन्दर्य से बढ़कर संसार मे और कही भी सौन्दर्य नही दिखायी पड़ता, इसे चाहे तुम मेरी आँखों का दोष कह लेना और चाहे मेरी नादानी। परन्तु मैं सच कहती हूँ चम्पा, मानव-सौन्दर्य की तुलना मे ठहरने लायक सौन्दर्य मुझे अन्यत्र दिखायी न पड़ा।

तुम कहोगी, इस पत्र मे इन सब बातों की जरूरत क्या है, मै मानती हूँ इसे। पर चम्पा, तुमने अपने पिछले पत्रो में मुझ-पर अभियोग लगाया है कि मैं प्राणनाथजी का केवल सौन्दर्य ही

देखकर रीझ गयी और उनका हृदय नहीं टटोला। सच कहती हो तुम, लेकिन बीबी जी, प्रेम भी क्या पहले तर्क की कसौटी पर कस लिया जाता है, तब किया जाता है? मैंने तो ऐसे किसी भी स्त्री या पुरुष को नहीं देखा जो पहले बैठकर विचार करले कि अमुक से प्रेम करूँ या न करूँ? यह मैं मानती हूँ कि विवाह बच्चों का खेल नहीं है, परन्तु यह सुकरात की पाठशाला भी नहीं है।

तुम समझोगी कि मैं तुमसे लड़ रही हूँ, पर बीबी जी, मैं शोख कुछ भले ही होऊँ, गुस्ताख़ नहीं हूँ और फिर तुमसे लड़ूँगी? लेकिन क्या तुम फरियाद भी न करने दोगी?

इसी पत्र में आगे चलकर तुमने कहा है कि तुम्हारी बातें मुझे बुरी मालूम होती होंगी, भला तुम यह क्या कहती हो? तुम जो बात मेरी भलाई के लिये कहोगी, उसीके लिये मै बुरा मान जाऊँगी? इतनी नादान नहीं हूँ चम्पा बीबी।

बस इतना ही। एक बार लल्लू को मेरे जूठे होठों से चूम लेना बहन, भला!

तुम्हारी अपनी,

निर्मो

आगरा,

प्रातःकाल

प्यारी नीला,

बलैया लेती हूँ। इस समय अगर तुम्हारे पास होती तो सचमुच तुम्हारी उँगलियाँ चूम लेती। दिदिया, इस पत्र मे तो, तुम्हारी शपथ, तुमने बड़ी अच्छी अच्छी बातें लिख डालीं, मानव-सौन्दर्य को इतना परख चुकी हो तो बलैया लेती हूँ! देखती हूँ किसी की आँखो मे घुलकर मदिरा बन जाना चाहती हो, किसी की पुतलियों मे पिघल कर प्रकाश बन जाना चाहती हो, किसी के प्राणों में बस कर स्पन्दन बन जाना चाहती हो। बन जाओ निल्लो, अब मैं तुम्हे न रोकूँगी। जीवन का अब ऐसा अनूठा आत्म-समर्पण कर चुकी हो तो नहीं रोकूँगी। जब कोई युवती एक ही नजर में निछावर हो जाने की कहानियाँ

सुनाने के लिये आतुर रहा करती है, उस समय उसे रोकना अच्छा नहीं। प्रेम के इस नवीन अङ्कुर पर चिनगारी फेंकनेवाली चम्पा नहीं होगी नीला।

लेकिन देखना इस उथल-पुथल के बीच नाव किसी और किनारे न लग जाय। नाव चलाते समय हवा का रुख देखना तो आवश्यक है ही, परन्तु उससे भी आवश्यक है अपने दिशा का ध्यान रखना। जरूरत हो तो अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिये कष्ट झेलकर हवा के प्रतिकूल भी जाना पड़ता है। समझ रही हो न?

वे आज ही अबला आश्रम के महोत्सव से लौटे हैं और लौटे है एक अनोखा रहस्य लेकर। इस समय हमारे घर मे दो अतिथि आये हुए है। एक हैं गुरुदेव—मै इनका नाम नहीं जानती और लोग इसी नाम से इन्हे पुकारते हैं और दूसरी उन्ही के साथ एक सन्यासिनी रूपसी। गुरुदेव पूरे लम्बे क़द के लगभग ६० वर्ष के पुरुष। आँखो में तेज, ललाट पर आभा, लम्बी श्वेत दाढ़ी, सदैव भोली-सा मुसकिराहट सहित वदन—यह है गुरुदेव। और २४-२५ वर्ष की यह तरुणी—सन्यासिनी तरुणी। आज सवेरे से ही यह तरुणी जो सन्यासिनी है और यह सन्यासिनी जो तरुणी है, मेरे हृदय पर रहस्यों का जाल बुनती जा रही है। जीवन में मैंने सन्यास की कभी कल्पना

भी नहीं की। मेरे हृदय की नारी सदा से नारी ही रही है—पुरुष-पति की नारी। मेरा नारी हृदय, जो केवल पत्नित्व से घिरा हुआ है, वही और केवल वही सत्य, सजीव और सार्थक है। अपने 'अहम्' का जो विद्रोह है, वह कभी जागा नहीं और सन्यास का जो आत्म-समर्पण है, उसकी कल्पना कभी उठी नही। चुपचाप बिना किसी अन्तर या बाहर के विक्षोभ के मेरे भीतर की जो पत्नी बहती जा रही है, उसमे कोई भी वाधा, विराम या चाञ्चल्य नहीं। सदैव से वह एक-सी नारी ही तो रही है—केवल एक पत्नी-सी। और तब इन देवीजी ने आकर जैसे जगाया हो कि यौवन के सारे सौन्दर्य और सौन्दर्य के सारे अर्थों से सजी हुई यह भी एक नारी है जो पत्नित्व से दूर अपने एक पृथक अस्तित्व मे वसी हुई निर्वाण की राह में वढ़ती चली जा रही है।

परन्तु इस स्वाभाविक कल्पना के अतिरिक्त कुछ स्वाभाविक आश्चर्य भी हैं नीला। प्रभु के चरणों पर आत्म-समर्पण की यह जो लीला चुपचाप हो रही है, उसके मूल में 'अहम्' का विद्रोह रहा है या नहीं और इसके लक्ष्य मे—मीरा-की-सी इस साधना में प्रभु को पाने अथवा उन्ही मे विलीन हो जाने की कौन सी आकांक्षा है?

ऐसा होता है—वहुधा भावावेशियो के सम्वन्ध मे—कि

वे किसी अपने जीवन से सर्वथा असम्बद्ध घटना से, अपने ही से उलझ जाते है। और मैं तो इसी नारी मे उलझ पड़ी हूँ। मेरे सारे प्रश्नों को जब यह नारी केवल हँसकर टाल देती है तो अपने प्रति इसकी उपेक्षा मैं स्पष्ट देखती हूँ। पर उस हँसी में भी करुणा की जो एक रेखा खिच उठती है, वही तो मुझे उलझा देती है। कोई एक पहेली है नीला, जो हृदय मे है और जिसकी एक छाया आँखो की राह से स्पष्ट हो जाती है। कोई कितना भी छिपाये पर आँखें कब मानती हैं, वे तो कह ही डालती हैं। पर यह सन्यासिनी नारी जो आज रहस्यमयी बन रही है, फिर भी मेरे लिये गूढ़ अर्थों की एक कविता ही बनी रह जाती है। मैं इसका अर्थ समझने का प्रयत्न न करती तो बात कुछ और थी, पर प्रयत्न करके इस उलझन की विकलता तो अच्छी नहीं लगती।

आज सवेरे उन्होने "भारती" का एक अङ्क दिया जिसमें एक गीत छपा है, 'दोनों ओर'। लेखिका हैं, "परित्यक्ता" पर वास्तविक लेखिका है, यही देवीजी—ऐसा बताया है इन्होने। उसे उद्धृत करती हूँ, तुम भी देखो न उसे। चञ्चल भावावेश की आवेगमयी भाषा मे भी एक स्थिर और सर्वथा अचञ्चल प्राण इसके भीतर है। लिखती है,—

"एक ओर जीवन की इस सूनी समाधि पर नरक—पापी

नरक की सन्तप्त ज्वालाएँ अपमानित क्लीत्व की भाँति धधक रही हैं और उनकी प्रज्वलित वह्नि-शिखाओं से जीवन के सारे हौसले भस्म होते जा रहे हैं और दूसरी ओर जीवन—पतितों की अरमान भरी आशा की तरह जीवन वेदना-हीन उन्माद में नववधू के सुहाग की भाँति पुकार पड़ता है 'प्यार'।

एक ओर जीवन की निधियाँ—जीवन के अतुल वैभव जीवन के उसपार पहुँचते-पहुँचते लुटे जा रहे है और आशाओं की अभिलाषाएँ निर्दयता के स्वप्नलोक में विधवा के सुहाग की भाँति अन्तर्हित होती जा रही है। प्राण-अभागा प्राण जीवन-संग्राम में व्यथा की चञ्चल होकर अपनी समूची शक्ति खोता जा रहा है और दूसरी ओर—उफ! दूसरी ओर किसी के अल-साये आह्वान मादकता के छींटे देकर सोया प्यार जगा रहे हैं!

प्राणों के सारे तन्तुओं को तूफान की तरह व्यग्र बना देने वाले एक ओर के करुणा के ये स्वर और दूसरी ओर के जीवन की भूली हुई रागिनियों और खोये हुए स्वरों को एकत्र कर एक स्थिर गत बजा देने वाले ये भाव . ...

जीवन की असाध्य पहेली, हे मेरे भाग्य के देवता! तुम्हीं बतलाओ कैसे सुलझेगी?"

सचमुच—सचमुच कैसे सुलझेगी निल्लो रानी! जीवन के दोनों ओर दो समुद्र प्रतिकूल दिशाओं मे हहराते हुए बह

रहे हैं—तिनका सा अभागा प्राणी—सचमुच सचमुच-किस-किस ओर अपनी रक्षा करे।

देखती हो न दिदिया, इस रहस्यमयी नारी को। और यह लो, वे पुकारती हुई इधर ही आ रही हैं। बस बन्द करती हूँ।

प्यार नीला—तुम्हे हज़ार बार प्यार।

तुम्हारी वही,

चम्पा

पुनश्च:—

लेकिन, हाँ, एक बात तो भूली ही जा रही थी। लल्लू को तुम्हारी ओर से चूमना चाहती थी, मगर उस ज़िद्दी लड़के ने "जूठे होठों" चुमवाना अस्वीकार कर दिया। तब ? इस विवशता का कोई उपाय है ? है नीला ? नहीं है ?

—चम्पा

कलकत्ता,

१० बजे दिन

भाई प्रभाशङ्करजी,

दिल्ली में जब से आपसे मुलाकात हुई, तभी से आपकी ओर एक आन्तरिक आकर्षण से खिंचा रहा हूँ। यद्यपि हम लोग अपने सात दिनों के प्रवासकाल में—लेकिन आपके लिये यह प्रवास कैसे कहूँ?—सिर्फ तीन ही दिन मिल सके और वह भी केवल अल्पकाल के लिये ही, फिर भी आपके स्वभाव ने जो अभिन्नता पैदा कर दी और जिस आत्मीयता की धारा मेरे हृदय में बहा दी, उसके आधार पर आपसे आज एक खास बात पर राय लेना चाहता हूँ। आपने कुमारी नीलम को तो देखा ही है और उनसे बातें भी आपने की हैं। वे मिसेज़ प्रभाशङ्कर—उन दिनों की कुमारी विनोदिनी देवी-की हार्दिक सहेली रही हैं, इस बात को आप खूब जानते हैं। मैं जिस बात को

आपसे पूछना चाहता हूँ। वह भी शायद आपसे छिपी नही है। फिर भी पहेली की भाषा छोड़कर सीधी बात पर आना चाहता हूँ। क्या कुमारी नोला का पाणिग्रहण कर—उन्हे अपनी जीवन-सहचरी बनाकर हम दोनों जीवन मे सुखी, सन्तुष्ट और सफल हो सकेंगे ? मेरी मनस्थिति इस समय ठीक नहीं है और इसलिये इस विषय पर आपसे बातें करना बहुत आवश्यक हो गया है। आप सहायता कीजिये मेरी प्रभा बाबू। लेकिन, कुमारी नोला के साथ मेरे पाणिग्रहण की बात से आप चौक तो नहीं पड़े ?

आपकाही,

प्राणनाथ

पटना,

सन्ध्या, ७ बजे

भाई प्राणनाथजी,

चौंक पड़ने की तो कोई बात नहीं। मैंने आप दोनों—आप और भावी मिसेज़ प्राणनाथजी की सारी गति विधि का अवलोकन अपने दिल्ली प्रवास में-जो अब आपके लिये भी शायद 'प्रवास' न रह जाय—किया था। मानव-जीवन से मुझे दिलचस्पी है, और इसलिये स्वयं तो मैंने निरीक्षण किया ही था इसके अतिरिक्त स्वयं विनोदिनी ने भी जैसी बातें मुझसे की थी, उनसे प्रकट हो जाता है कि वे आपको चाहती हैं। भाई प्राणनाथ तुम चौंकने की बात कहते हो। पर मैं तो बधाइयाँ देता हूँ तुम्हे—पेशगी बधाइयाँ। तुम्हारा यह सम्बन्ध मुबारक रहे हज़ार वरस, हर वरस के दिन में पचास हज़ार!

पर तुम्हारी मनस्थितियाँ ठीक नहीं है? अरे, मुहब्बत का

हाज़मा इतनी जल्दी खराब हो गया! लेकिन भाई, तुम ठीक ही कह रहे हो, प्रेम की दुनिया में जिसकी मनस्थितियाँ ठीक हैं—जो पागल नहीं है—जो बेहोश नहीं है, जो होशियारों की तरह इस दुनिया में प्रेम के पंथ पर पैर रखते है वे प्रेमी नही—सच्चे प्रेमी नहीं। प्रेमी तो—

हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या ?

में ही डूबा रहता है और इसके लिये पागल बनने की आवश्यकता है ही। लेकिन आप निर्णय करने में असमर्थ क्यों हो रहे हैं ? आपने अपने पत्र मे तो ऐसी कोई बात नहीं लिखी जिससे इस प्रकार की अव्यवस्थित परिस्थिति का भान हो। आप दोनों ही पूर्ण स्वस्थ एवं सुन्दर है, दोनों ही एक दूसरे पर तन मन से निछावर; फिर यह असमर्थता क्यों ? आपकी स्वाधीन प्रवृत्ति का तो पता मुझे पहले से है और कुमारी नीला के मार्ग में भी ऐसी कोई बाधा आयेगी, ऐसा मैं नहीं सोचता। यदि वैवाहिक उत्तरदायित्व लेने की बात आप सोच रहे हों तब तो ठीक ही है। वास्तव में विवाह एक उत्तरदायित्वपूर्ण घटना है जो पुरुष के जीवन में घटती है। पर मैं तो सोचता हूँ कि आप दोनों ही सन्तुष्ट रहेगे। विवाहित जीवन मे यदि पारस्परिक विश्वास पर अवलम्बित प्रेम की ज्योति जलती रहे, तो पथभ्रष्ट होने की कोई भी आशङ्का नही।

लेकिन भाई प्राण, विवाह के पहले ही अपने को असमर्थ घोषित कर रहे हो, यह तो कोई शुभ लक्षण नहीं। क्या वे ऐसा जान लेने पर भी राज़ी हो जायेंगी ? सिद्धान्त की दृष्टि से न सही, नीति ही की दृष्टि से इसे छिपा रखो, नहीं तो पछताना पड़ेगा समझे ?

तो हमलोग कब के लिये तैयारी कर रखें ?

आपका,

प्रभाशङ्कर

दिल्ली,

वसन्त का सुनहरा प्रभात

७ बजे प्रातःकाल

प्यारी चम्पा बहन,

अभी स्वप्नों से विचलित होकर उठ बैठी हूँ। और स्वप्न भी कैसे ? पलकों के भीतर पुतलियों को आसव पिला देने वाले ये स्वप्न—इनकी—परियों के देशों के इन सुनहरे स्वप्नों की सृष्टि विधाता ने क्यों कर डाली ? क्या उसने कभी सोचा था कि जब सुन्दरियाँ अपने 'किसी' की याद करते-करते सो जायेंगी और तब ये मायावी उन्हें विचलित कर जगा देंगे और उनके लज्जा से होंठ दबाते ही ये न जाने कहाँ अन्तर्द्धान हो जायेंगे ? क्या उसने कभी सोचा था कि उनकी इन वञ्चक क्रीड़ाओं से कामिनियों के हृदय के तार हिल उठेंगे और उनके जीवित स्पन्दन बजने लगेंगे ! उसने कभी सोचा था कि इस दुनिया में जो कुछ

सम्भव भी नहीं है, उसे भी—इस रंगीन जगत को भी वे सजीव और सार्थक बनाकर तत्काल ही लाकर आँखों के सामने खड़ा कर देंगे और प्राणों की पीड़ा को क्षणभर के लिये सुलाकर उन्हे पुनः एक मधुर पीड़ाओ के देश में छोड़ आयेंगे ? कभी सोचा था उसने चम्पा रानी ?

स्वप्न—जागृत अवस्थाओ के ये स्वप्न—सोती रजनी मे सौन्दर्य की मर्म कहानी की तस्वीर पुतलियो पर खींचने की कौन-सी बान इन्होने सीख रखी है। जब सो रहे हों और तब चोरों की तरह सुन्दरी रमणियो की शय्या पर चढ़ जाना और चुपके से उनकी पलकों के भीतर उनसे निर्ल्लज्जता के खेल खेलना, यही बान है इनकी—इन रात-रात भर तरुणियो के अन्तःपुर में अलख जगाते रहनेवाले स्वप्नों की !

शकुन्तला की भौंरों से रक्षा करने के लिये तो महाराज दुष्यन्त दौड़ पड़े थे। पर इन स्वप्नो से रक्षा कौन करे ? ये पापी क्या पाते हैं आँखो मे जो··· ·!

आज ही उनका एक पत्र मिला है चम्पा बहन—एक सुन्दर, विचलित कर देने वाला पत्र। भगवान ने चाहा तो शीघ्र ही हम दोनों प्रणय-सूत्र मे बँध जायेंगे। पर झगड़ालू है चम्पा वह पुरुष और साथ ही अव्यवस्थाएँ उत्पन्न करनेवाला ! एक दिन की ज़रा-सी भेंट और यही सारा जीवन बन बैठी।

अपने को मैं सदा उसी पुरुष की मुसकिराहट से घिरी पाती हूँ, हाय ! स्वर्ण-किरणों पर कुंकुम की हल्की-सी रेखा। चम्पा बहन, इस पुरुष के प्रथम चरण पड़ते ही मैं तो सर्वथा अव्यवस्थित हो गयी। मेरे नन्हे से जीवन-प्याले में एक तूफान-सा उठ खड़ा हुआ है। काश, मैं अपना सारा जीवन इसी में तिरोहित कर देती !

पर यह झगड़ा लगा देने की बात ! उसका पत्र आया नहीं कि झगड़ा उठ खड़ा हुआ ! पर यह कैसा झगड़ा है चम्पा, कितना सुन्दर !

आज सन्ध्या को जब उनका पत्र आया तो मैं घर पर नहीं थी, थी राज्यश्री। राज्यश्री को तो तुम जानती हो और इधर दो वर्षों में तो वह और भी शोख़ हो गयी है।

"दिदिया," उसने एक लिफाफा दिखाते हुए कहा, "यह देखो।"

"क्या है राजो ?" मैंने पूछा। पर मैंने उनके अक्षर पह-चान लिये थे।

तुम कहोगी, अक्षर पहचान लिये थे !

"क्या मै ऐसे ही दे दूँगी !" मेरे बढ़े हुए हाथ—सूने हाथ बढ़े ही रह गये—"मैं जानती हूँ, यह किसका पत्र है नीला बहन। इसे क्या मै ऐसे ही दे दूँगी ?"

"किसका है री ? यह तो चम्पा का पत्र है, और राजो ! देखो तुम्हे उसका पत्र नही पढ़ना चाहिये।"

"अरी वाहरी नीला वहन, मुझे ही धोखा देना चाहती हो ? उसने पत्र को कनखियों से देखते हुए कहा, "यह पत्र तो·····" वह खिलखिलाकर हँस पड़ी।

"अच्छा बताऊँ किसका पत्र है ?" उसने फिर पत्र के बाएँ किनारे पर कुछ पढ़ते हुए कहा।

और मैंने संकेत किया बताओ।

"प्रा-ण-ना-थ"—उसने साँय-साँय धीरे से कहा।

"झूठ !" मैंने उसे धोखा देने के विचार से ही कहा था।

"झूठ ?" उसने सिर हिलाया।

"उनका पत्र है तव चाहे तुम मुझे दो या न दो। मुझे कोई चिन्ता नहीं।"

"चिन्ता तो निल्लो वहन तुम्हे खूब है। यों मुझे दिखाने के लिये चाहे जो कहो !"

"जव तू इतनी अक्लमन्द है तो दे ही क्यों नहीं देती ?"

"तो क्या दोगी ?"

"लेगी क्या ?"

"मैं कुछ न लूँगी, तुम तो कहती थी न कि तुम्हे कोई चिन्ता नहीं है, फिर इतनी उतावली क्यों वन रही हो ?"

राज्यश्री मुझे न जाने कितना तंग करती, इसलिये मैंने झपटकर उससे पत्र ले लेना चाहा। लेकिन मैं जैसे ही उसे

पकड़ने के लिये दौड़ी, वह माँ के कमरे मे घुस गयी। अरे! माँ के साथ विनोदिनी भी बातें कर रही है—विनोदिनी दो दिनों के लिये अपने शिमला के मार्ग में ठहर गयी है, चम्पा,—अरे अब तो हुआ भण्डाफोड़। मेरा कलेजा धकधकाने लगा।

राज्यश्री माँ के पास बैठ गयी और मै दरवाजे के बाहर आड़ से चुपचाप संकेत से अनुनय विनय करने लगी और वह कभी ताककर मेरी ओर मुसकिरा देती और कभी तो देखती भी न।

राजो बाहर आयी। आखिर उसका भी तो बाल-हृदय कुतूहल से नाच रहा था न, बाहर आते ही उसे मैंने एक बार चूम लिया।

"तू तो कैसी रानी सी है मेरी राजो! पत्र दे दो न, तू तो कितनी अच्छी है—अहा! मेरी राजो कितनी अच्छी है।"

"अच्छा-अच्छा, ठहरो मैं अभी देती हूँ। लेकिन तुम मुझे क्या दोगी?

"बोलो?" हाय री मेरी उत्सुकता!

"उनका वही फोटो, जो तुमने किताब मे रखा है?

"कौन-सा फोटो राजो? किस किताब मे?" मैं चञ्चल हो उठी, तो क्या इसने फोटो भी देख लिया है?

"स्मृति मे।"

"स्मृति में? क्या तुमने देखा है उसे राजो?"

"माँ और विन्नो वहन ने भी तो देखा है नीला बहन !"

"माँ और विनोदिनी ने भी ? उन लोगों ने उसे कैसे देखा राजो ?"

"मैंने दिखाया ।"

"तू ने ? तू मेरी किताबे क्यो उलटा करती है ? तू ने उसे उन लोगों को क्यो दिखाया ? क्यों दिखाया तूने ?

मेरी आवाज़ कुछ ऊँची हो गयी और राज्यश्री के होंठों पर की मुसकान घुलने लगी । उसकी आँखो मे आँसू आ ही जाते कि मैंने पुचकारा । पर आँसू तो आ ही गये ।

मेरे बहुत दुलार करने के बाद उसने कहा, "माफ करो निल्लो बहन, मैं तो स्मृति के चित्र उलट-पुलट कर देख रही थी कि वह फोटो भी उसी में मिल गया । और मैंने माँ के पास उसे ले जाकर कहा, माँ यह किसका फोटो है ?"

"ओह ! तू माँ के पास लेकर चली गयी ? मुझसे क्यों नही पूछ लिया तुमने ?"

"तुमसे कैसे पूछ लेती निल्लो बहन, तुम तो उस वक्त कालेज गयी थी ।"

"और तुम्हे तो स्कूल-उस्कूल कहीं जाना नहीं है, तुम्हें तो मेरे कमरे की तलाशी करनी है । अच्छा तो देखो, तुम्हारे दो कसूर हुए, एक तो तू स्कूल नहीं गयी और दूसरे मेरे न रहने

पर मेरी चीज़े जाकर दूसरे को दिखा आयी। अच्छा तब ?"

"मैं नहीं जानती।" उसने तपाक से हाथ छुड़ाते हुए कहा, "हाथ छोड़ो, मैं तुमसे बात नहीं करूँगी।"

"बस ? रूठ गयीं। अच्छा वह फोटो मैं तुम्हे दे दूँगी, लेकिन बताओ तो, माँ ने क्या कहा ?"

"तुम मुझे मारोगी ?"

"ना, राजो कभी नहीं। तुम्हे मारूंगी राजो !!"

"नहीं मारोगी ?"

"ना"

"तो मैं जब माँ के पास फोटो लेकर गयी, तो माँ ने उसे लेकर विनोदिनी बहन को दिखाते हुए कहा, क्यो री विन्नो, यही है उनका फोटो ?"

"यही तो हैं, आपको पसन्द है न माँ जी ?"

"कुछ बुरा तो नहीं विन्नो, रईस जान पड़ता है।"

"तो मालूम होता है आपकी स्वीकृति मिल जायगी ?"

"खूब कहती है तू भी विन्नो। भला मेरी स्वीकृति और अस्वीकृति की कौन सी बात है ? आजकल की लड़कियाँ तो विवाह मे स्वाधीनता चाहती है। तू ने भी तो प्रभा को अपनी ही इच्छा से चुना था। क्या निल्लो भी तुम्हारी ही तरह न करेगी ?"

"तब विनोदिनी ने कहा नीला बहन कि 'दो क़दम कहीं आगे

न बढ़ जाये नीला रानी ! मैंने केवल उन्हे पसन्द कर लिया था, सारी बाते तो आपने ही तय की थीं।"

"तब माँ ने क्या कहा राजो ?"

"बहुत तुम्हे सुनने की इच्छा है क्या नीला बहन ?"

"अरी कह भी।"

"तो माँ ने कहा नीला बहन, 'उन्होंने उसे जैसी स्वाधीनता दे रखी है, उसमें वह भी ऐसा ही कर सकती है। देखती तो तू है बिन्नो, उसके बाबूजी ने उसे कितना सिर चढ़ा रखा है ?"

"तब मैं स्कूल चली गयी, मुझे क्या मालूम कौन-सी बातें हुई।"

"हाँ, स्कूल गये बिना तो तुम एक दिन रह नहीं सकती थी !"

"अभी तो तुम स्कूल न जाने पर दण्ड दे रही थीं नीला बहन ?"

पर दण्ड तो चम्पा मैं दूँगी अपने—इस हृदय के राजा को जिसने जीवन प्याले मे यह तूफान उठा रखा है। लेकिन मै तुम्हे प्यार करती हूँ मेरे प्यारे ! तुम्हारे झगड़ों को भी मैं प्यार करती हूँ। तुमसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रत्येक चीज को प्यार करती हूँ। दण्डों का विधान—अपने प्राणों के अन्यतम स्वामी से ! अपने राजा को अपना अपराधी बनाकर दण्डो का विधान ! वाह री मैं !!

आज मैने लिखा था उन्हे चम्पाः—

"तुम्हारी भुजाओं मे स्वप्नो के गीत ! लहराती हुई सरिता की लहरों का मर्म संगीत, सुना है कभी तुमने मेरे प्राण ? अपने को

भूले हुए पवन का कलियों के घूँघट हटाकर उनके होंठ चूम लेने के समय की उसकी मस्ती का समझा है अर्थ तुमने मेरे प्राण ?

और नारी का यह जो जीवन है, यह है मर्मों का एक भाण्डार, जिसे हँसती हुई आँखें, उलझे हुए मस्तिष्क कभी न समझ सकेंगे। नारी के सारे अस्तित्व की सृष्टि प्रेम के एक कोमल आह्वान के उत्तर को लेकर निर्मित हुई है। ऐसा मैं सोचती हूँ, पर नारी जाति पर से उसके हल्केपन का अभियोग हटाया न जा सका! आज तक—युगों—असंख्य युगों के बाद भी आज तक!!

इस समय जब मैं यह पत्र लिख रही हूँ, तुमने चारो ओर से मुझे एक क्षितिज की भाँति घेर रखा है, और आज मैं सुभागिनी अपने को तुम्हारी वन्दिनी बनी पा रही हूँ।

वसन्त कालीन इन सौरभो के बीच आकुलायित पवन की लहरें तुम्हारे प्राणो को क्या कुछ सन्देश नहीं दे जाती प्रियतम? इन्हीं सौरभो के बीच जी करता है कोयल की तरह कूक उठूँ—जी करता है बुलबुल की तरह चहक उठूँ! पर आज मैं सुभागिनी अपने को बन्दिनी बनी पा रही हूँ!"

पर इसे क्या मैं भेज भी सकती हूँ उनके पास ? ना।

अब बस कर दूँ ?

तुम्हारी,

नीलम

भैया प्रभा,

तुम्हारा पत्र अभी-अभी मिला। तुमने प्राणों में एक मीठी चिकोटी काटकर उसे धीरे से गुदगुदा दिया है। लेकिन इस समय मै हँसने की अवस्था में नही हूँ। अपनी मनोवृत्तियों पर नियंत्रण न रख सकने के कारण मैंने जो एक नयी बला मोल ले ली है, उसी मे उलझ उठा हूँ। भगवान का विधान—लेकिन भगवान के विधान को क्यों दोष दूँ, यह तो अपना—अपने दुर्भाग्य का विधान है जिसमे पड़कर मैं पिसा जा रहा हूँ, जिसे सुनकर तुम मुझे पापी कह बैठोगे और बात भी करना पसन्द न करोगे, लेकिन इस समय तुम्हारे सिवा और कोई है भी नहीं जो इस पहेली को सुलझाये !

बिना किसी संकोच के सीधी बात पर आता हूँ ! सच बात तो यह है कि मेरी अवस्था इस समय इन पुरुषो की सी है, जिनका ब्याह हुआ भी रहता है और नहीं। तुम्हे उलझाऊँगा नहीं। सीधी-सी बात सीधे ही ढंग से कहूँगा। अब से तीन वर्ष पहले मेरी विवाह एक लड़की से हुआ था और वे देवी मेरे घर

में आयी भी। किन्तु हम दोनों के दिल एक न हो सके। दोनो के बीच में एक ऐसा पहाड़ आ खड़ा हो गया कि हम लोग एक दूसरे को देखते हुए भी न देख सकते थे, एक दूसरे की बात सुनते हुए भी न सुन सकते थे। हम दोनों की दुनिया अलग हुई और दुनिया ही क्यों, हम दोनो स्वयं भी अलग हो गये। चौको नहीं, वास्तव में हम दोनों अलग हो गये। वह देवी आज भी जीवित हैं, और आज भी हम लोग एक दूसरे को जान रहे है। इतना ही क्यो हम लोगो मे आजकल पत्र व्यवहार भी हो रहा है। एक ओर तो यह सब हो रहा है और दूसरी ओर नीलम हृदय की रानी बन रही है। दोनों ही दिशाओं मे मै खिचा जा रहा हूँ प्रभाशङ्कर। और किसी ओर भी मैं अपने को इतना क्षमताशील नहीं पा रहा हूँ कि दूसरी ओर जाने से अपने को रोक सकूँ। उनसे इधर जो पत्र व्यवहार होते रहे है, उनसे तो यही पता चलता है कि वे भी पुनः प्राणो मे संगीत भरने के लिये आ सकती हैं और पुनः अपने हृदय के पुराने आसन पर विराजमान हो सकती है। कई वर्षों की लम्बी अवधि के पश्चात जब मैंने उनके पास अपना पहला पत्र भेजा था उससे वे बिल्कुल ही 'धक' हो गयी थी और ठीक याद तो नही आता और न तो वह पत्र ही इस समय मेरे पास है परन्तु जहाँ तक याद है उन्होने उसके उत्तर मे कुछ लिखा था उसमे स्पष्टतः रुखाई झलक रही थी!

" 'धक', हो गयी"—उन्होंने सम्भवतः लिखा था—"मृत्यु की तरह शान्त किन्तु मृत्यु की विकल कल्पना की भाँति भयावह आज और अभी अभी आपका एक पत्र मिला है......मिजराब की चोट खाये हुए तार की तरह प्राण बज उठे, जैसे मुझे कोई मेरी कब्र में जगा रहा हो।......" यह उनके उस पत्र के भाव थे। परन्तु मेरे बाद के पत्रों के उनके उत्तर ऐसे आये प्रभाशङ्कर बाबू कि उनसे यही मालूम होता है कि वे पुनः मेरे उजड़े मन्दिर में अपनी आलोक माला बिखेरने को तैयार हैं।

मैंने ही उन्हे अपनी मूर्खता से परित्यक्ता बना दिया और उन्हे अपना सोने का सौन्दर्य तपस्या की आग में तपाना पड़ा। और जब मैंने स्वयं उनका आवाहन किया, तब वे पुनः अपना तपोवन छोड़कर मेरे जीवन-वन मे निकालने को तैयार दिखायी पड़ी, ऐसी दशा में मैं क्या करूँ, मेरे समझ मे नही आता। पत्र व्यवहार के आरम्भिक दिनों मे ही मुझे मेरा भाग्य दिल्ली खींच ले गया और वहीं रूपवाणी में देवी नीलम के दर्शन हुए। बाद को आपके ब्याह के दिनो में ही उनसे भेंट हुई और उनके ही आग्रह से कई दिन वहाँ रुक जाना पड़ा।

अब मेरी स्थिति ऐसी हो गयी है कि बुरी तरह उलझ गया हूँ। एक ओर तो मेरी पहली पत्नी की मेरे लिये सारी तपस्या और उस तपस्या की सारी साधना, उनका सारा त्याग और उस

त्याग की सारी करुण गाथाएँ है और दूसरी ओर देवी नीलम को दिया हुआ वचन और उस वचन की सारी पीड़ाएँ; उनका अपार सौन्दर्य और उस सौन्दर्य की सारी मादकता है। किसे लूँ और किसे न लूँ? दोनों ही सुन्दर हैं, आकर्षक हैं, और दोनों ही मे जीवन की सच्ची साधना के वीज हैं। एक ओर तो मैं अपनी भूल के प्रायश्चित्त-स्वरूप अपनी पहली पत्नी को पुनः प्राप्तकर उनकी आँखो से अपना पथ प्रकाशित करने की धुन मे था और दूसरी ओर इसके साथ ही नीलम की स्मृति से भी अपने दुर्भाग्य का शृंगार करने में सुध बुध खोकर लगा हुआ था। आशा के विपरीत दोनों ही साधनाओं में सफलता मिली, परन्तु आज दोनों को अपनाने में संसार क्या कहेगा? अगर इन दोनों मछलियों को अपने मानसरोवर मे छोड़ दूँ तो कैसा रहे? दो फूल क्या एक हृदयोद्यान मे नहीं खिल सकते? नर्गिस की दो पंखड़ियाँ क्या एक ही साथ नहीं मुसकिरा सकती? क्या एक ही डाल पर बैठी हुई दो कोयलो की कूक से वनस्थली पुलकित नहीं हो सकती? दोनों में से किसी को छोड़ा नहीं जा सकता, परन्तु दोनो ही को क्या एक ही मन्दिर में बसाया भी नहीं जा सकता? क्या कहते हो प्रभा भैया, मैं तुम्हारी ही राय की प्रतीक्षा में हूँ। मेरी पहली पत्नी का पत्र अभी उस दिन मिला है जिसमें उन्होंने आत्म-समर्पण कर देने का भाव दिखाया

है और दूसरी ओर नीला देवी का एक वह पत्र भी है जो मुझे अभी कल मिला है और जिसमे उन्होंने इस बात की इच्छा प्रकट की है कि "इसी बसन्त कालीन सौरभ के बीच हमलोगों का ब्याह हो जाय।"

क्या किया जाय भैया प्रभा ? इस हलचल से निकलने का क्या कोई उपाय है ? दोनो ही पक्षियो के कलरव से क्या जीवन के नंदन-निकुंज को मुखरित नही किया जा सकता ?

तुम्हारा ही,

—प्राण

भाई प्राण,

किया जा सकता है। दोनों ही पक्षियों के कलरव से जीवन-कुंज को मुखरित किया जा सकता है। परन्तु यदि इतनी क्षमता न हुई तो? तो परिस्थितियों की—तत्कालीन परिस्थितियों की पुकार का क्या उत्तर दोगे? इतना बड़ा उत्तरदायित्व लेने में आखिर इसीलिये तो असमंजस होता है।

जीवन मे भावुकता का बड़ा स्थान है, परन्तु केवल भावुकता से ही जीवन बसाया नहीं जा सकता। संसार का जो रूप हम देखते हैं, वास्तव मे वही इसका सच्चा रूप नहीं है। संसार कठोर सत्यों से बना है, उसपर केवल एक कोमल आवरण चढ़ाकर भगवान ने मानव जाति के समक्ष उपस्थित किया है, अन्यथा दुर्बलताओं और अपूर्णताओं से पीड़ित प्राणी, पहली ही बार देखते सहम जाता और आत्मघात कर बैठता। केवल शरीर के आघात का ही नाम आत्मघात नहीं है, प्राणनाथ, शरीर के जीवित रहते, प्राण-वायुओं के चलते, स्पन्दनों के संगीत गाते रहते और जीवन-धारा में तिनके की तरह बहते रहते भी

कुछ प्राणी आत्मघात किये रहते हैं। प्राणी निराशा के कारण ही आत्मघात करता है, यह कहना जितना सत्य है, उतना ही यह कहना भी सत्य है कि निराशा ही पालना आत्मघात करना है। ऐसी दशा मे निराशा पूर्ण असम्भवता को मैं कभी प्रश्रय नही देता, इसीलिये कहता हूँ कि किया जा सकता है, दोनो ही पक्षियों के कलरव से जीवन-कुंज को मुखरित किया जा सकता है। परन्तु इतनी क्षमता हम दुर्बल प्राणियो में है प्राणनाथ ?

तुमने एक ऐसा प्रश्न किया है कि अनायास ही गम्भीर हो जाना पड़ता है। किन्तु यह अस्वाभाविक भी नही है। इस प्रश्न का सम्बन्ध समस्त जीवन से है और यदि पुनर्जन्म में विश्वास किया जाय तो उससे भी। वैवाहिक समस्या को हमारे यहाँ यही रूप दिया गया है और ज्ञात ऐसा होता है कि तुमने भी इसी दृष्टि से इस समस्या को देखा अन्यथा इतना असमञ्जस ही न करते।

अपने इस पत्र मे एक साँस मे ही तुमने बहुत सी बातें कह डाली हैं प्राणनाथ ! तुमने यह जानने का मौका ही नहीं दिया कि अपनी पहली पत्नी का तुमने परित्याग क्यो कर दिया। जो भी हो, यहाँ इस बात की चर्चा करने की अब आवश्यकता भी न रही। अब तो तुम पुनः अपने आवाहन के उत्तर स्वरूप अपनी देवी जी को प्राप्त कर रहे हो और साथ ही नीलम देवी को भी। एक ही मान सरोवर में दो मछलियो की क्रीड़ा भी तुम्हें

आकर्षित कर रही है। तुम्हारा यह स्वर्गीय स्वप्न—इस तार को मैं क्यों काट दूँ। पर, दोनों ही मछलियों के लिये उचित खूराक तुम दे सकोगे? अगर न दे सको तो? तो क्या एक भी मछली को तुम सन्तुष्ट न कर सकोगे? अगर नहीं तो? तो इस स्वप्न की प्रतिक्रिया क्या कुछ भी चैन लेने देगी? बहु विवाह की प्रणाली प्राणनाथ इस अभागे देश को छोड़कर कहीं भी नहीं है और नहीं है केवल इसलिये कि वैवाहिक जीवन का मुख्य आधार प्रेम इस प्रकार से जीवित नहीं रह सकता।

पत्नी-रूपा गृहीत नारी वास्तव में हमारे प्राणों की रानी हुआ करती है। हमारा तन-मन-धन—जीवन का सर्वस्व उसके—केवल उसीके लिये होता है। त्याग की—सर्व्वस्व त्याग की भावना का यह मंगल सन्देश हमें केवल प्रेम-देवता की ओर से मिलता है प्राणनाथ और इस त्याग मे बँटवारा नहीं; प्रेम मे बँटवारा नहीं; हृदय और आत्मा मे बँटवारा नहीं। संसार के एक महायोगी ने जब भगवान के चरणो पर गिरकर यह भीख माँगी थी कि देवता अपना सब कुछ लुटाकर अब मैं अपना जीवन भी तुम्हारे ही चरणों पर निछावर कर देना चाहता हूँ, तब उसका क्या अर्थ था? यही तो कि प्रेम आदान नहीं प्रदान है। जीवन के लिये मृत्यु और प्राप्ति के लिये उत्सर्ग! प्राणनाथ, क्या तुम अपने को साधारण मानवों से बहुत ऊपर के प्राणी समझते हो कि बिना

किसी भेद-भाव के, बिना किसी अनुराग-विराग के तुम दोनों प्राणियो में प्रेम का बँटवारा कर लोगे ? कर सकते हो ?

प्रेम होता है—प्रेम होता है—एक से—केवल एक से। संसार के प्राणी केवल अपने प्रियतम के चरणों पर अपना सर्वस्व चढ़ाकर संतृप्ति लाभ करते हैं—जीवन की सबसे बड़ी साध पूरी करते हैं। जब प्रियतम से लगन लग गयी, जब उसकी आँखो का नूर आँखों की राह से हिये मे उतर गया। जब उस घर के भीतर अकेले बैठे-बैठे प्रियतम की मूर्ति आने और प्राणो को गुदगुदाने लगी, तब तो—तब तो प्रेमी—पागल प्रेमी की आँखों में और कौन समाये प्राणनाथ, तब तो—

"प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छबि कहाँ लखाय।"

उस समय तो वह अपने प्रियतम को ही सर्वत्र देखता है। सर्वत्र हर वस्तु मे, 'जर्रे ज़र्रे मे निहाँ यार नज़र आता है॥' उस समय प्राणी चिल्लाकर कह उठता है—

You haunt my waking like a dream,
My slumber like a moon,
pervarde me like a musky scent,
possess me like a tune.

प्रेम की इस उन्मद अवस्था का अनुभव प्राणी को तब होता है जब वह वास्तव में सच्चा प्रेमी होता है। प्रेम बाज़ार का

सौदा नहीं है प्राणनाथ—चिड़िया घर नहीं है। प्रेम देवता से खेल करने का दुस्साहस कोई न करे, यह इतनी सस्ती वस्तु नहीं है। प्रेम का प्याला बड़ा ही मीठा परन्तु बड़ा ही कटु भी है—प्रेम का सौदा—भाई प्राणनाथ!

प्रेम पियाला जो पियै,
शीश दक्षिणा देय।

प्रेम का प्याला पीनेवाले तो बहुत दिखाई पड़े, परन्तु शीश-दक्षिणा कितनों ने दी? कितने तो—

"यह प्रेम को पंथ कठोर महा,
तलवार की धार पर धावनो है।

कहकर ही अपना पिंड छुड़ा लेते हैं, क्योंकि जानते हैं कि-

प्रेम करि काहू सुख न लह्यो।

परन्तु जिसने वास्तव में प्रेम-रस चख लिया, उसके लिये शीश-दक्षिणा देना एक मामूली-सी बात है, वह तो निर्भय होकर कह देना है—

"उनपर मरने को ही मैंने
जीने का सुख माना है।"

और इसीलिये तो—

"सर से कफ़न लपेटे कातिल को ढूँढ़ते हैं।"

जब प्रियतम की सूरत पुतलियों में बन जाती है और जब

उसकी स्मृति में हज़ार बार आँसू बहाने से भी वह तस्वीर नहीं धुलती, जब दिन रात वही अपने प्रवंचक स्वप्नों से प्राणों को घेरे रहता है और जब उसी के प्राणों के स्पन्दन अपने प्राणों में सुनाई पड़ने लगते हैं, तब वह अपने आपे में नहीं रहता, तब उसे उपदेशक समझा बुझा नहीं सकते, तब समष्टि में व्यष्टि और व्यष्टि मे समष्टि का अन्तर उसकी दृष्टि में कुछ भी नहीं रह जाता और तब अपनी सत्ता को अपने आराध्य की ही सत्ता मे मिलाकर सागर में एक बूँद बनकर गलकर, उसीमें विलीन हो जाता है। उसी समय वह अनन्त प्राणी इस बात का अनुभव करता है प्राणनाथ कि,

Better to have loved and lost than never to have loved at all

और वह अनुभव भी क्यों न करे, प्रेम से बढ़कर और संसार की कौनसी ऐसी विभूति है, जिसपर वह नाज़ करे, संसार में एक ओर घृणा और उसकी सारी भयानकता, पाप और उसकी सारी कुटिलता, ईर्ष्या और उसकी सारी दाहकता और मोह और उसकी सारी नाशकता है और दूसरी ओर प्रेम और प्रेम की सारी शीतलता है प्राणनाथ, जिसमें पड़कर जीवन का सारा ताप नष्ट हो जाता है, प्राणों की सारी आँधियाँ बन्द हो जाती हैं। लेकिन यह प्रेम क्या बँटवारे से प्राप्त होगा? जबतक

बँटवारे की भावना बनी हुई है, जब तक बँटवारे की अनुभूति तक होती रहती है और जब तक प्राणों पर कई भाव राज्य करते रहते हैं, तबतक प्राणी क्या उत्सर्ग का मंगल सन्देश सुन सकता है ? एक साथ ही दो पक्षियो के कलरव से जीवन-कुंज मुखरित करते रहना क्या हँसी खेल समझ रखा है तुमने प्राणनाथ ?

मेरी बातों से रुष्ट मत हो। रुष्ट करने के लिये मैंने कुछ लिखा भी नहीं, मेरा यह उद्देश्य ही नहीं। मैं तो केवल तुमसे एक ही बात कहना चाहता हूँ और वह यह कि तुम इस बात का भली भाँति अनुभव कर लो कि प्रेम एक और केवल एक से ही होता है। तुम्हारे सामने अगर सच पूछो तो समस्या यह नहीं है कि दोनों ही देवियों को अपने हृदय की रानी बना दो, या एक को, बल्कि समस्या वास्तव मे तो यह है कि दोनो मे से किसको बनाओ ! और इस समस्या का समाधान मेरा ख्याल है तुम स्वयं करो ! प्रेम के सम्बन्ध में मै जो ऊपर एक नन्हा-सा लेक्चर झाड़ गया हूँ, उसका उद्देश्य यह नहीं है कि तुम्हे प्रेम की महिमा बताऊँ और आज की दुनिया इस प्रकार की महिमा को कोई स्थान भी नहीं देती, परंतु जो है, उसकी सत्ता मिटायी नही जा सकती। जब तक दुनिया है, जबतक सूरज और चाँद की किरणो मे प्रकाश है, जब तक समीर में संचलन और प्राणियों में स्पन्दन है तब तक प्रेम रहेगा—प्रेम की महिमा रहेगी और

प्राणों पर जादू डालनेवाली अनुभूति रहेगी। जब तक ये वस्तुएँ हैं प्राणनाथजी, तब तक त्याग और उत्सर्ग की भावनाएँ भी मानव-प्राणों को आलोड़ित करती रहेंगी और तब तक प्रेम में बँटवारे का भी प्रश्न नहीं उठ सकता।

आप सोचिये तो सही कि किसी एकान्त कमरे में जब समीर आपके बन्द दरवाजे पर एक थपथपी लगा जाता है और अपनी उनींदी चेतनता में सिहर उठते हैं, उस समय क्या आपकी मनोभावनाएँ उद्वेलित नहीं हो उठतीं? लेकिन यह उद्वेलन उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना महत्वपूर्ण है उस उद्वेलन की यह चाह कि मनस्थिति ज्यों की त्यों बनी रहे। उस समय आप भावों का बँटवारा नहीं चाहते, प्रेम की भी ठीक यही अवस्था है। प्रेमी वास्तव मे अपने प्रियतम को ही—केवल अपने प्रियतम को ही सर्वत्र देखना चाहता है और वह केवल इसलिये कि यही प्रेम की पराकाष्ठा है और इस पराकाष्ठा तक पहुँचने के लिये प्रेम का एकात्म्य बहुत जरूरी है। फिर क्या विभाजित प्रेम ऐसे एकात्म्य की अवस्था उत्पन्न करने मे समर्थ है? हम जब तक अपने आराध्य की पूजा करते करते उसे वास्तव में आराध्य न बना दें और जब तक हम वास्तव में इस बात की अनुभूति अपने अन्तर के अन्तस्तल से न कर लें कि

"सब घट मेरो साइयाँ, सूनी सेज न कोय"

तब तक हम प्रेमी बनने का दावा ही क्यों करें।

बात बहुत बढ़ गयी मालूम होती है इसलिये इसे यहीं समाप्त करता हूँ। लेकिन एक बात का ध्यान रहे भाई कि प्राणों के स्पन्दन जिस किसी तरफ़ घसीट ले चलें, उधर ही मत बह चलो। वैवाहिक बन्धन एक पवित्र बन्धन है। यह शरीर और आत्मा दोनों का बन्धन है। इसी से दो अधूरे प्राणी एक होते हैं। दो अव्यक्त लालसाएँ व्यक्त होती हैं और दो धाराएँ मिलकर एक ओर को प्रवाहित होती है। यदि इस धारा को तुमने दो पथों से प्रवाहित करने का प्रयत्न किया, तो इसका भयानक उत्तरदायित्व तुम्हारे ही कन्धों पर रहेगा। लेकिन ऐसा कहते समय मै तुम्हारी मनस्थिति से भी असावधान नहीं हूँ। इस समय तुम्हारे सामने वास्तव में बड़ी जटिल समस्या है। तुम स्वयं तो असमर्थ हो ही और मैं भी इस दशा मे कुछ भी राय देने मे असमर्थ हो रहा हूँ। मुझे तुम कृपया कुछ सोचने का समय दो।

विनोदिनी तुम्हे नमस्ते कर रही है।

तुम्हारा,

प्रभाशङ्कर

आगरा,

आधी रात की चञ्चल घड़ियाँ

स्वामी !

कितनी जल्दी तुम विचलित जाते हो ! इसी के कारण मैंने अपना सब कुछ खोया, और सब कुछ खोकर आज मैं तो रोती ही हूँ, तुम्हे भी रुला रही हूँ। अपने व्यथित, लाञ्छित और उपेक्षित जीवन की दारुण कहानियों को सुना-सुनाकर आज तुम्हें भी रुला रही हूँ। इसके लिये—इस पाप के लिए क्या तुम मुझे कभी भी क्षमा कर सकते हो स्वामी ? मैं तो चाहती हूँ कि अपने आँसुओ की इस सूनी दुनिया मे जिसके भग्नावशेष स्मृतियों में निरन्तर एक रुदनभरा संगीत बज रहा है, अपनी इस सूनी दुनिया मे जिसके गिर रहे छोरों को मानसिक वेदनाएँ महार्णव की हहराती हुई विक्षुब्ध हिलोरों से टकराकर, घात-प्रतिघात कर, क्षीण अस्तित्व पर एक विह्वल हँसी हँस जाती हैं और अपनी इस सूनी दुनिया में, जिसमें, दिन हुआ ही नहीं, किरणें आई ही नहीं, प्रकाश फूटा ही नहीं—अपनी इस दुनिया में मैं तो चाहती

हूँ अपने अरमानों के भग्नावशेष को साँसों के स्पन्दन से ही जीवित करती, आँसुओं से सींचती और पालती रहूँ ! परन्तु तुम ? तुम तो पत्थर मार मारकर जगाने की प्रतिज्ञा कर वैठे हो मेरे स्वामी। मैं क्या वताऊँ ? इतने दिन तक चुपचाप वैठे रहने—प्रभु के चरणों पर अलख जगाने की अवस्था में मुझे छेड़ने का दुस्साहस तुमने क्यों किया मेरे तुनुक मिज़ाज़ राजा ? ·····लेकिन हरे ! हरे ! मैं उसे दुस्साहस कहती हूँ स्वामिन् ? ?

आज कल मानसिक स्थितियाँ विल्कुल ही ठीक नही हैं। गुरुदेव आज कल यहीं ठहरे है। मैं भी तो उनके साथ ही हूँ। परन्तु विल्कुल साथ ही कैसे कहूँ ! इस शरीर से तो यहीं हूँ, पर मानसिक कल्पनाएँ तो अनन्त के न जाने किस चिरलोक मे जाकर अन्तर्हित होने लगती हैं। और कल्पनाएँ भी कैसी स्वामिन् कि एकदम नव्य और भव्य ! लेकिन यह भी कैसे कहूँ। ये कल्पनाएँ तो कोई नया भाव नहीं जगातीं। वही आँसुओं का गीला इतिहास ! वही उपेक्षा की निदारुण कहानियाँ !! और आपही को मै कौन सी नयी कहानी सुनाने जा रही हूँ, किस नूतन इतिहास का नया परिच्छेद सुनाऊँ ! यह सब लाऊँ कहाँ से ? और फिर सुनने सुनाने का अवकाश ही किसे है ? जब भावी इतिहास अपनी उलझनों से मस्तिष्क और हृदय करो रहा हो, तब अतीत की चिर-गाथाओं को कोई क्यों सुने ? सुनने

की आवश्यकता ही किसे है ? तो फिर वही आँसुओं से भीगी हुई कहानियाँ ! लेकिन स्वामिन् वह भी तो तुमसे नहीं छिपी हैं !

'प्रतारणाओं की यह व्यंग्य भरी चोट अब नहीं सही जाती केसर रानी ! किसी आघात से जब प्राणी को रोने की भी चेतनता न रह जाय, तो वैसा आघात ही क्यो किया जाय ? आघात की व्यथा का भी अनुभव जब घायल न कर सके, तो आघात करनेवाले के किस उद्देश्य की पूर्ति होगी जो······!"

यह सब कैसी बातें तुमने अपने पत्र में लिख डाली हैं, देवता ! इस प्रकार की तीव्र भाषा की आवश्यकता ही क्या थी ? इन पापी प्राणों से यदि अपने देवता के विरुद्ध कुछ भी अपराध—अपने उस देवता के प्रति, जिसके एक ही भृकुटि-संकेत पर मैं घर द्वार सब छोड़कर चली आयी, जिसकी एक ही आशंका पर मैंने उसे—अपने सर्वस्व को—अपने प्राणों के अन्यतम स्वामी को भी छोड़कर चली आयी और अपने उस देवता के प्रति जिसके और केवल जिसके ही सन्तोष के लिए यह बसन्त भरी जवानी आग में तपा रही हूँ, अपने उसी देवता के प्रति ये पापी प्राण कुछ भी अपराध करेंगे !······यह मैं क्या सुन रही हूँ देवता ! तुम ऐसी आशंकाओं को—उन्हीं प्रलयङ्करी आशंकाओं को अब भी—आजतक पालते आ रहे हो, यह देखकर मैं अपने भाग्य पर रोने लगती हूँ। रोने के सिवा—आँचल भिगोकर प्राणों

को शीतल करने वाले आँसुओं को छोड़कर अब मैं किसकी शरण लूँ? जब अपने देवता ही रूठे हों, तब कोई किसकी शरण में जाये?

आपके लिए—आपके सुख और सन्तोष के लिए मैंने किसे नहीं छोड़ा? आपके लिए ही मैंने सारे संसार को छोड़ा, आपको भी छोड़ा। आपके पास जब तक मैं थी—न जाने किस दुर्दैव ने आपके दुख के लिए ही मुझे आपके घर में भेज दिया था—तब तक आपके चेहरे पर प्रफुल्लता न आयी, आँखों मे करुणा के भाव न आये और ओठों पर मुसकिराहट न आयी! आज कहती हूँ, जब प्राणों का सारा राज़ खुल ही गया, तो आज कहती हूँ, आपके अधरो पर एक नन्ही सी मुसकिराहट देखने के लिये मैं आकुल रहती थी, एक नन्ही-सी पल भर को हँसी के लिए व्याकुल रहती थी! उस समय—अपने समस्त आँसुओं की शपथ, उस समय यदि भाग्य के देवता, एक क्षणके लिये भी प्रसन्न होते, तो उनसे माँगती—उनसे यही वर माँगती कि "प्रभो, एक क्षण के लिए ही, केवल पल भर के लिये ही मेरे स्वामी हँस दें, प्रभो!" आपकी उस नन्ही-सी हँसी के लिए मैंने नीरव एकान्त में कितना रोया था, अपने कितने आँसू बहाये थे, इसे सुनाकर क्या करूँगी? रोती ही तो आज भी हूँ। मेरा जन्म ही निरन्तर रोने के लिए हुआ है।

फिर भी मैं आपको "प्रतारणाओ की व्यंग्य-भरी चोट

पहुँचा रही हूँ" यह तुम क्या कह रहे हो स्वामी ?......

अपने इसी पत्र में एक जगह आपने फिर लिखा है "कितने दिनों से—यह बड़ी लम्बी अवधि है केसर रानी—प्राणों का सारा प्यार लपेटे चुपचाप बैठा हुआ हूँ ! छः सालों के दिन कम नहीं होते केसर, परन्तु तुमने ध्यान ही नहीं दिया, इतना गिड़गिड़ाना, इतना रोना-गाना क्या एक भी काम आया ? इधर महीनों से प्यार की जो यह भीख माँग रहा हूँ, उसपर तुमने एक दृष्टि भी डालना उचित नहीं समझा, तुम सदा ही उसे ठुकराती रहीं।"

आपके पत्र के यह शब्द हैं और इनकी प्रतिध्वनि ने पिछली रात में मुझे कितना कँपाया है इसे मैं क्या बताऊँ ?

पर घट घट के भीतर बसनेवाले अन्तर्यामी ! क्या यह बातें सच है ? क्या मैंने कभी भी अपने देवता की आज्ञाओ को ठुकराया है ? स्वयं जलकर जिसकी स्मृति को मै पापिनी अपने आँसुओं से हरी किये हुए हूँ......फिर भी, उफ रे मेरा भाग्य !!

परन्तु स्वामी, तुम क्या इसी प्रकार की बातें सदैव करते चलोगे ? एक क्षण के लिए भी क्या मेरे भाग्य मे यह नही बदा है कि मै सुख पूर्वक आपकी स्मृति में मत्त-विभोर होकर अपने को भुला सकूँ ? पिछले दिनों प्रभु के चरणों पर अपना जीवन और जीवन की समस्त आशाएँ और अपने अरमानो और उन अर-

मानों की समस्त लिप्साओं को निछावर कर दिया था। प्रभु के चरणों पर जिन वस्तुओं को मैंने एक तुच्छ निर्माल्य बनाकर भेंट कर दी थी, उसीको हमारे जीवन के देवता आज वापस ले लेने को कह रहे हैं। प्रभु के चरणों पर गिरा हुआ वह निर्माल्य पुनः उठाकर छाती से लगा लूँ, यही आदेश है तुम्हारा मेरे मालिक? आपका यह आवाहन, मुझे उलझाओ मत मेरे मालिक! मेरी इस विपत्ति का साथी कौन होगा? किसके आधार पर यह दुनिया छोड़ दूँ? नयी दुनिया की ओर देखते ही आँच लगने लगती है।

"अब तो यह स्थिति नहीं सही जाती केसर रानी! मेरा जीवन बिना पतवार की नाव हो रहा है। मैं बहता जा रहा हूँ, परन्तु किस किनारे जाकर लगूँगा, इसका पता नहीं! क्या......"

इतने विचलित न हो मेरे देवता! बिना पतवार की नाव! हरे हरे, क्या मेरे जीवन का यह कङ्काल अब भी आपके किसी काम का है? है मेरे मालिक??

आपकी ही,

—केसर

पुनश्चः—

पत्र लिखने के दो घंटे बाद यह पुनश्च लिख रही हूँ। आप चाहे न हों, पर मैं उलझ उठी हूँ। आप ऐसे पत्र क्यों भेजते हैं?

नीलारानी,

चुप तो नहीं रह गयी, सारी रात केसर देवी की कहानी प्राणों में उथल-पुथल मचाती रही। सारी कहानी तो अभी मैंने नही सुनी है परन्तु जो कुछ सुना है, ऐसा मालूम होता है कि प्राणों के प्रत्येक स्पन्दन मे वही कहानी बज रही हो।

"तो तुम न मानोगी चम्पा बीबी?" उन्होने मेरी ओर कातर दृष्टि से देखते हुए निरुपाय वाणी में कहा "आपकी जिद्द को मैं क्या कहूँ, आपकी यह कहानी अभी तक मैंने किसी से भी न बतायी। सोचती हूँ, भाग्य के देवता ने जब अपने पैरों से ठुकरा दिया, तब उसकी कहानी क्या बाँटती फिरूँ, अपने साथ ही इसे लेकर चिता में जल मरूँ, बस यही लालसा अवशेष रह गयी है अब, पर क्या तुम न मानोगी चम्पा बीबी?"

उनकी आँखे मेरे चेहरे पर गड़ी रह गयीं, मैंने देखा कि उनमें कातर आँसू भर आये हैं।

"मैं हठ करने की धृष्टता आपसे नहीं करूँगी," मैंने कहा

"यदि आपके हृदय में इससे जरा भी पीड़ा पहुँचती हो तो आप न कहिये। लेकिन आप ··केसर देवी, आप रोती हैं ?···

सचमुच उनकी आँखों से आँसू टपक पड़े!

"मैं ही अब बिना कहे न मानूँगी! हृदय में जो यह आँधी इतने दिनों तक उठती रही है, उसे अब निकाल डालना चाहती हूँ। अब रोने की इच्छा नहीं होती चम्पा बीबी। अब तो आँसू भी सूख चले हैं। सारा जीवन ही तो रोते रोते बीता है। क्या कहूँ मैं अपने भाग्य को:—

गुंचा चटका और आ पहुँची खिजाँ।
फस्ले गुल की थी फकत इतनी बिसात॥

और नीला! किस स्त्री का जीवन हँसते-हँसते बीता है? और रोना तो हमारे जीवन की दैनिक घटना है।

"तो चम्पा बीबी!" उन्होंने कहना प्रारम्भ किया—"लड़कपन से ही मैं बहुत भावुक थी! शायद यह मेरी दरिद्रता का प्रभाव रहा हो। दरिद्र जीवन बितानेवाले प्रतिभा-सम्पन्न प्राणी प्रायः भावुक हो जाते हैं। निरन्तर आघात-प्रतिघात की चोट खाते-खाते, आकांक्षा करते किन्तु उनके पराजित होने पर दरिद्र युवक और युवतियाँ भावुक हो जाते हैं और इसका परिणाम उन्हें भुगतना पड़ता है जीवन के मध्यकाल में। संसार तो आखिर नम

सत्यों से बना है न, फिर इसमें भावुकता अभिशाप ही है, परन्तु मैं इस अभिशाप की सच्ची उपासिका बन गयी ! दिन रात— अपने बचपन में ही—स्वप्नों का जाल गूँथने लगी।

और सच पूछो तो इन स्वप्नो ने ही मेरा सारा खेल बिगाड़ दिया ! जिन दिनों मैं अँगरेजी की दसवी कक्षा में पढ़ रही थी, उन्हीं दिनों स्कूल में एक नाटक खेला गया था और मेरे भाग्य फूटे, मैंने भी उसमें भाग लिया और प्रशंसा लूटी ! नाटक स्वदेश-भक्तों ने खेला था और उसके भाव भी वहुत उच्चकोटि के थे इसलिये मुझे भी नाटक में भाग लेने की आज्ञा दे दी गयी। मैंने कभी भी इन बातो में संकोच नहीं किया था चम्पाबीबी, इसलिये कुछ भी हिचकिचायी नहीं। मुझे प्रधान नायिका का काम सौंपा गया था और भूमिका यह दी गयी थी कि नायक असहयोग-आन्दोलन में भाग लेने के लिये बाहर जाना चाहता हो उसी समय उसकी पत्नी उसके सामने खड़ी होकर उसका अभिषेक कर रही हो। अभिनय में स्वाभाविकता लाने के लिये हमलोग अपनी दैनिक पोशाक मे ही थे।

वह अभिनय तो समाप्त हो गया, पर कौन जानता था कि मेरे जीवन का सच्चा अभिनय अब शुरू होगा। मेरी उस समय की ऐक्टिंग इतनी सुन्दर हुई चम्पा कि सभी लोग मंत्र मुग्ध-से हो रहे और तालियों की तमुल-ध्वनि से जैसे आसमान गड़गड़ा

उठा। हमलोगों का उस समय का एक चित्र लिया गया। उस समय गर्व से छाती फूल उठी। सभी की आँखों में केवल दो थे। और दोनों लज्जा से गड़े जा रहे थे! मुझे उस समय ध्यान भी न आया था कि उस युवक के साथ मेरे अभिनय का वह चित्र दुर्भाग्य अपने हाथों से खींच रहा था।"

केसर देवी कुछ सोचती सी दिखाई पड़ीं। ऐसा मालूम हो रहा था कि सुदूर अतीत के चिर-स्वप्नों को उनकी खुली आँखें देख रही हों, उनकी अचल दृष्टि शून्य में विलीन हो रही थी। वे बोलतीं भी न नीला रानी, परन्तु मैंने उनकी समाधि भंग की, मैंने कहा "तब ?"

"क्या बताऊँ चम्पा बहन," उन्होंने एक दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए कहा "उसी चित्र से जीवन की समस्या उलझ उठी। ब्याह के बाद जब मैं अपने पतिदेव के घर गयी, तो वहाँ का ऐश्वर्य और वैभव देखकर दंग रह गयी। मेरे पतिदेव·····, क्या बताऊँ चम्पारानी, कोई भी स्त्री उन्हे पाकर धन्य हो जाती, लेकिन मै, मेरा भाग्य ही जलने लायक था! मैं उन्हे सन्तुष्ट न कर सकी।"

"क्यों केसर रानी!" मैंने कहा "आपका सौन्दर्य तो अब भी—वर्षों तपस्या की अग्नि में जलते रहने पर भी इतना

मोहक है, फिर आपके पतिदेव क्या चाहते थे ? यदि आप जैसी रमणी भी उन्हे सन्तोष न दे सकी, तो···"

"बात यह नहीं है चम्पा बीबी", उन्होंने अकुलाते हुए कहा, "बात यह नहीं है। मेरा उनका मन ही न मिल सका ! सुहाग रात में ही हमारे मनोभाव कुछ इस तरह के हो गये कि हमारे उनके बीच मे एक गहरी खाई हो गयी। सुहाग रात का दम्पति के समस्त जीवन पर प्रभाव पड़ता है चम्पाबीबी ! अगर वह रजनी सफल हो गयी—दो हृदय एक हो गये, तो समझ लो, भाग्य के देवता ने एक ऐसा वरदान दे दिया, जिससे समस्त जीवन सुख के झूले पर झूलता रहेगा, अन्यथा जीवन भर अभि-शाप की आग में जलना पड़ेगा। सुहाग रात में ही दो प्राणी एक दूसरे को पहचानते और इस बात का निर्णय करते हैं कि किसको कितना हृदय दिया जा सकता है। हृदयों के आदान-प्रदान की यह क्रिया भावी जीवन का भाग्य-निर्णय करती है इसलिये,·····इसमें भूल हुई नहीं कि जीवन नरक बना। सुहाग रात·····"

"तुम अपनी कहानी कहतीं बहन।" मैं ऊब उठी, मुझे केसर देवी की कहानी, उनके सुहाग रात के इस उपदेश से अधिक जँचती थी।

"वही तो कह रही हूँ" उन्होने तत्काल ही उत्तर दिया।

"घबड़ाती क्यों हो चम्पा बीबी, वही तो कह रही हूँ। सुहाग की वह रजनी हमलोगों की ठीक न बीती। मेरे पतिदेव, हाय मैं उतनी आकांक्षाओं को क्या कहूँ! बहन, पुरुष स्त्रियों की भावनाओं को कब समझेंगे। मैं अपनी बात नहीं कहती हूँ। लेकिन देखती हूँ, पुरुषों की मनोवृत्ति ही कुछ और ढंग की होती है।

"मेरा तो" मुझसे न रहा गया, "मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि पुरुषों की जब तक स्त्रियाँ स्वयं अवहेलना नहीं करेंगी, तब तक वे मानने के नहीं। मुझे स्वयं एक नववधू की स्थिति का ज्ञान है। उस बेचारी वधू ने पति के इच्छानुसार एक नजर में ही आत्म-समर्पण कर दिया और इसका फल उसे यह भोगना पड़ा कि पति ने अपनी पत्नी को "वेश्याओं की तरह निर्लज्ज" घोषित कर दिया। लेकिन यदि वही नववधू लज्जा से सिर झुकाये रहती और तत्काल आत्मसमर्पण न कर देती तो हजरत कहते कि मानिनी वानिनी कुछ भी नहीं जी, कमीनी औरत है। किसी और कारण से प्रेम न करती होगी। जानती हो बहन, इस "किसी कारण" का अर्थ क्या है?—यही कि इसका प्रेम ही किसी और से है। अविश्वास न करो नीला, पुरुष ऐसे ही निर्लज्ज होते हैं, अपनी पत्नियों से, उनके चरित्र के सम्बन्ध में वे किस समय क्या कह बैठेंगे, इसका कुछ भी पता नहीं।"

"वह रात तो" केसर देवी ने कहा "वह रात तो ज्यों त्यों

करके बीत गयी। समझती थी, वे वास्तव में रुष्ट हो कर गये हैं, अतः दूसरे दिन मनाना पड़ेगा। मनाऊँगी, चाहे—जिस तरह से हो, मनाऊँगी, परन्तु चम्पा बहन किसे मनाती ? उस रात के बाद फिर वे आये ही नहीं।

"आये ही नही ?"

"एक क्षण के लिये भी नहीं।" उन्होंने विश्वास के स्वर में कहा "दिन को ही एक घटना हो गयी। सवेरे मैंने अपने कपड़े रखने के लिये अपना सूटकेस खोला ही था कि उनका एक छोटा भाई लगभग १० वर्ष का बालक—मेरे कमरे में चला आया और कहने लगा। "मेरे लिये क्या लाई हो भाभी ? चिन्ताकुल होने पर भी मेरे होठों पर हँसी आ गयी। मैंने कहा, इतनी देर के बाद तुम आए हो, इसलिये तुम्हारा दावा खारिज हो चुका है। रत्ना और रमेश तो अपना खिलौना कल ही ले गये लेकिन तुम आज आये ?

"मैं लजाता था भाभी" ,उस भोले भाले बालक ने कहा "नही तो मैं कल ही आता, अब रोज आऊँगा !"

"अब नहीं लजाओगे ?"

"ना, अब तो मैं रोज आऊँगा। क्यों भाभी क्या तुम मुझे स्कूल जाने से बचा लोगी ?"

"तब तू यह क्यों नही कहता कि तुम किसी खिलौने के

लिये नही, वल्कि शरण लेने आये हो। तू पढ़ने से जी चुराता है ? तव तो मैं तुम्हे कुछ नही दूँगी।"

"मैं जी कहाँ चुराता हूँ ? हमारे स्कूल में एक मौलवी साहब हैं जिनकी दाढ़ी इतनी बड़ी है भाभी"...ऐसा कहते हुए उसने अपने दाहिने हाथ को फैलाकर वाये हाथ को कँखौरी पर लगा दिया और कहा "तुमने कभी इतनी लम्बी दाढ़ी देखी है भाभी ?"

"मैंने मुसकराते हुये सिर हिला दिया कि नही।"

"तव तो तुम देखते ही डर जाओगी भाभी ! वाप रे वाप, मौलवी साहब......

"तो तू दाढ़ी ही के डर से नहीं पढ़ने जाता क्या ?"

"अरे, मौलवी साहब से हमलोग क्यों डरें ? उनको तो हमलोग अमरूद देते हैं, मुझे तो उन्होने कभी नही मारा भाभी !

"फिर तुम क्यो नही जाओगे ?"

"तुम्हारा मोह लगेगा !" उसने कहा। मेरे पेट में हँसते हँसते बल पड़ गये।

मैंने कहा "मेरा मोह ? तुम तो अच्छे प्रेमी निकले किशोर। बस तुम्हारे ही साथ मेरी शादी हुई होती तो अच्छा था !"

किशोर झेंप गया था। उसने कुछ कहा नहीं, उसकी निगाह मेरे सूटकेस में पड़े हुए उस चित्र पर अड़ गयी थी जिसे स्कूल अभिनय के साथ लिया गया था। उसने हाथ डालकर तत्काल

ही उठा लिया और कहा—"बस मैं यही लूँगा भाभी।"

लड़के ने एक न मानी। वह चित्र लेकर बाहर निकल ही गया। बाहर वे खड़े थे, ऐसा मालूम होता है। कोई आश्चर्य नहीं, वे हमारी बाते भी सुन रहे हों। उन्होंने उसके बाहर निकलते ही उससे पूछा "कहाँ थे किशोर?"

"अरे भैया!" किशोर ने आश्चर्य-चकित स्वर में कहा "मैंने भाभी से कहा कि मौलवी साहब की दाढ़ी एक हाथ की है, तो भाभी खूब हँसी और कहने लगीं कि क्या तुम उसी दाढ़ी से डरते हो। लेकिन मैने कहा मैं क्यो डरूँ, मौलवी साहब को मैं तो अमरूद देता हूँ।"

मालूम होता है उन्होंने उस फोटो को पहले ही से मुन्नू से अपने हाथ मे ले रखा था। उन्होंने कहा "यह फोटो कहाँ मिला रे?"

"भाभी ने दिया है!"

किशोर की आवाज आयी। मैं काँप उठी! हाय! ईश्वर!!

वही चित्र उनके कलेजे में गड़ गया चम्पा बीवी! उस चित्र के देखने के बाद उन्होने कभी भी—एक शब्द भी मुझसे स्वयं कुछ न कहा। और कहा कब जब हमलोग जीवन की दो दिशाओं मे थे। उस घटना के लिये किसे दोष दूँ। मेरा ही दुर्भाग्य मुझे खा गया।"

सुन रही हो नीला रानी ? केसर देवी की आवाज ऐसा कहते कहते काँप उठी। मैंने कहा "तब क्या हुआ ?"

"तब क्या हुआ ?" उन्होंने कहा तब जो कुछ हुआ, उसे देख ही रही हो बहन। तब तो मुझे वह घर छोड़कर बाहर निकल जाना पड़ा। लेकिन यह बातें फिर कभी कहूँगी। अगर जिद्द न करो, तो इसे योंही रहने दूँ। क्या पाओगी इसे सुनकर।

क्या पाऊँगी। इसे सुनकर नीला रानी, इसे मैं क्या बताऊँ लेकिन बिना पूरी कहानी सुने मुझे सन्तोष ही नहीं होगा। मैं तुम्हारी भी असन्तोष जानती हूँ नीला।

तुम्हारी,

चम्पा।

इधर तुम अपने उनके विषय में नहीं लिख रही हो। चुप-चाप किस लोक की सृष्टि कर रही हो ?

प्रिय प्रभाशङ्कर जी,

आप भी असमर्थ हो रहे है ? फिर कौन सुलझायेगा यह समस्या ? मुझे अपने स्पन्दनों पर भी तुम विश्वास नहीं करने देते, 'वे जिधर हीबहायें उधर ही न बह चलो' यह तुम्हारा उपदेश है और इसी के साथ मैं इसका निपटारा करने मे असमर्थ हूँ यह भी। तो क्या मैं अपनी जीवन-धारा को चारों ओर से मोड़ लूँ ? लेकिन अगर ऐसा सम्भव न हो ? और लेकिन क्यों ? यह तो एक दम असम्भव ही दिखायी पड़ता है।

अपनी पहली पत्नी को छोड़ने की बात ? काश, तुम इस प्रश्न को न छेड़ते और छेड़ने पर भी अगर मैं कुछ न बता सकूँ तो तुम क्षमा करोगे। और अगर सच पूछो तो छोड़ा तो मैंने आज भी नहीं हैं। मेरे जीवन का अधिकाधिक सम्मान उन्हीं के लिये है किन्तु यह सम्मान है प्रभाशङ्कर, और जीवन की भूख शायद सम्मान से ही नही मिट सकती, उसके लिये तो प्रेम की ही सबसे अधिक आवश्यकता है। केसर रानी में तेज है, तपस्या है और पापों की मलिन छाया उन्हें छू भी

नहीं पाती, किन्तु केवल इन्हीं के बल पर क्या प्रेम की दुनिया बसायी जा सकेगी ? उनका प्रेम है तपस्विनियों का-सा—दैवी—पवित्र—अचञ्चल। और मुझ अभागे का निर्माण हुआ है उन तन्तुओं से जो मानवीय हैं। मुझे देवत्व से अधिक मानवत्व प्रिय है। वह मानवत्व जो मानव है, चञ्चल है और अपनी अपवित्रताओं में भी पवित्र है, क्योंकि वह सांसारिक है—दैवी नहीं। लेकिन केसर रानी का प्रेम—उसे जैसे संसार से अलग रखा जा सकता है। जैसे वह हमारे शरीर की क्षुधा से पृथक रहकर ही जीवित और प्रफुल्लित रह सकता है। उनका सौन्दर्य जैसे चन्द्रमा का वह आलोक नहीं है जिसमें प्राणी क्षणभर अपना जी बहलाए और उसी के आनन्द मे अपना सब कुछ तिरोहित कर दे। वह तो है सूर्य का आतप भरा सौन्दर्य, जो सत्य है, शिव है और सुन्दर है, परन्तु जिससे आँखें नहीं मिलायी जा सकतीं, जिसका सुख मनुष्य अपनी आँखों से नही ले सकता। चन्द्रमा के सौन्दर्य मे मानवता है, उसमें हम अपने भावों की परछाई देख सकते हैं, अपने कौतुको की याद कर सकते हैं, परन्तु सूर्य के सौन्दर्य मे एक जो तेज है, वही जैसे सबसे अधिक सत्य है। उसमें मानवत्व से अधिक देवत्व है, और इसलिये मानव-जाति उसका उपभोग कर ले, परन्तु बिना स्पर्श किये हुए। वह अपने पथ के लिये उसमें प्रकाश पाले,

परन्तु प्रकाश का स्थल देखने का वह साहस न करे।

केसर देवी का यह तप और तेज भी तो बहुत कुछ ऐसा ही है। उनमें चाँद-सी मादकता नही है, है सूर्य-सा तेज और इसलिये वह अस्तित्व को भुलाने की जगह याद दिलाने लगता है और मुझे घेरे रहनेवाले भाव अपने को जब सचेतन देखने लगते हैं, तब मैं सोचता हूँ कि यह प्रेम नही बल्कि ज्ञान है और ज्ञान के परे जो प्रेम की दुनिया है, उसका इसमें जैसे कोई अस्तित्व ही नही।

यह मेरी मानसिक स्थितियाँ हैं और केसर देवी का जो मानस है, वह जैसे उसके शरीर से अलग है। जैसे वे स्थितियाँ शरीर के अवयवों से व्यक्त नहीं होती। प्रेम के लिये जैसे शरीर की आवश्यकता ही नही है। उनका प्रेम आकांक्षा नही है, वह है त्याग। परन्तु आकांक्षाओ से अलग रहकर प्राणी जी सके, ऐसा मुझे कठिन जँचता है। आकांक्षाएँ संसार की हैं, उसीके साथ पैदा हुई है। बल्कि आकांक्षाओं से दुनिया बनी है अथवा दुनिया से आकांक्षाएँ—यह भी कौन कहे?

और त्याग? त्याग मे मानवता से अधिक है देवत्व। अपने मन का जो एक ज्ञान है और ज्ञान के साथ ही जो एक आत्म-अहङ्कार है, भूले बिना त्याग की भावना को उत्पन्न करना असम्भव जँचता है और इस असम्भव को सम्भव करने की आकांक्षा

प्राय: सबमें सब समय नहीं उठती क्योंकि यह आकांक्षा वास्तव त्याग है और इन दोनों के बीच में जो 'अहम्' है, वह पूर्ण मानवीय है। परन्तु केसर देवी में मानवीय जैसे कुछ है ही नहीं। और मैं हूँ प्रभाशङ्कर, केवल एक मनुष्य। मैं मनुष्य की कमजोरियों और उसकी अपूर्णताओं को भी उतना ही प्यार करता हूँ, जितना उसके आत्मबल और पूर्णताओं को; किन्तु इनके अतिरिक्त उनमे जो एक देवत्व आ जाता है, वह मेरे प्रेम की नहीं बल्कि आदर की वस्तु है। मनुष्य की चरम सीमा मनुष्य में ही है, और जब वह देवत्व को प्राप्त होने लगता है, तो वह जितना ही उस तरफ बढ़ता चलता है, उतना ही 'मानवता' से दूर होने लगता है, और अन्त में जब वह पूर्ण देवत्व प्राप्त कर लेता है, तब वह मानवता की सीमा के परे हो जाता है और मानव-जाति से सर्वथा पृथक। और जो लोग यह कहते हैं कि मानवता का चरम आदर्श है देवत्व की प्राप्ति, सो यह तो विवादग्रस्त बात है। हमारे ख्याल से दोनों सर्वथा दो पृथक अस्तित्व हैं।

तो इन मनस्थितियों के बीच अगर मैं केसर देवी को प्यार करना भी चाहूँ तो शायद न कर सकूँ। उनके नाम पर ही मेरे अन्तर तम में श्रद्धा की एक लहर टकरा उठती है और मुझे ऐसा मालूम होता है कि मेरे भीतर एक ऐसा स्थान है जहाँ केवल केसर देवी के पद-चिह्न हैं। परन्तु उन चिह्नों का इस त्वचा से

कोई सम्बन्ध नहीं है मालूम पड़ता। लेकिन त्वचा का—शरीर के इन वाह्य अवयवों का जो अस्तित्व है और इस अस्तित्व की जो क्षुधा है, वह केवल आत्मा से नही बुझायी जा सकती। हमारे शरीर के स्पर्श से हमारे प्राणों के तार बज उठते हैं। परन्तु प्राणों की अनुभूति से ही उसके ऊपर का जो यह सत्य अस्तित्व है—जिसे नश्वर भी कहते है—वह अपनी स्पर्श की भूख कैसे मिटाये ?

मेरी मनोवृत्तियाँ मुझे पागल बना रही हैं। मेरे शरीर की जो लालसा है उससे केसर देवी के भावों का सामञ्जस्य बैठ सकेगा या नहीं, मेरे हृदय को यही भाव विकल कर उठते हैं।

वे मेरी विवाहिता पत्नी हैं। समाज ने ही नहीं—स्वयं मैंने और उन्होंने भी एक दूसरे को अपने में मिलाने का प्रयत्न किया है, और कुछ घड़ियाँ ऐसी भी रही है प्रभाशङ्कर कि हम एक ही होकर रहे हैं। उस समय जैसे दो थे ही नहीं। जैसे दो अस्तित्वों से एक ही—एक ही अमिट, अविनश्वर और अविभाज्य अस्तित्व बना था, पर इस समय वह मिट चुका है और इस समय तो हम दोनों के बीच में जो अन्तर है, वही सबसे अधिक सजीव हो उठा है—जैसे केवल वही सत्य हो—वही अमिट, अविनश्वर और अविभाज्य !

और इसी अन्तर के स्थल पर आकर खड़ी हो गयीं हैं

नीलम रानी। उनके पद-चिह्नों की जो एक रेखा अन्तर में खिंच उठी है वह इस अन्तर को सजग कर और भी विस्मृत किये दे रही है। और मैं समझ नहीं पाता कि मुझे क्या करना चाहिये।

मेरी शरीर की लालसा को कोरा भोगवाद रहकर उसकी उपेक्षा भी की जा सकती है। परन्तु जीवन में भोग को महत्व क्यों न दिया जाय, यह बात मेरी समझ मे अबतक न आयी। भोग को तो—मैं हम शब्द को इसके गम्भीर दार्शनिक अर्थ में प्रयुक्त करता हूँ—योग के लिये भी आवश्यक मानता हूँ। मुझे विश्वास नहीं होता कि मानवजाति के इतिहास में ऐसा भी कोई समय आयेगा जब अकेला योग ही जी सके। योग की आकांक्षा की तरह भोग की भी आकांक्षा भी—माननीय ही है। अतः अकेले वही संसार मे जी सकेगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता, और अगर जिये भी तो वह कितना वाञ्छनीय है, यह भी एक प्रश्न है जिसका एक ही उत्तर नही हो सकता।

अतः प्रभाशङ्कर अपनी भोग-मूलक प्रवृत्ति के लिये मुझे तो पश्चात्ताप नहीं होता। क्योंकि यह पूर्ण माननीय है और मुझे तो दानवता और देवत्व के बीच में विकसित होने वाला मानव ही अधिक प्रिय है। हाँ, कभी कभी मनमें ऐसा भी प्रश्न उठा है कि मनुष्य के भीतर भोग की जो प्रवृत्ति है, वह मानवीय तो है, परन्तु वह उस मानवता का ही एक अङ्ग है जिसमें दान-

वता का अंश अधिक है। मानवता, दानवता और देवत्व के बीच में है, अतः दोनों ही से उसका सम्पर्क है और कभी वह एक से और कभी दूसरे से सर्वथा पृथक होने के लिये जो संघर्ष करती है, उसी की अभिव्यक्ति कभी तो भोग की और कभी योग की प्रवृत्ति में होता है। लेकिन भोग और योग उसकी पराजय तथा विजय के परिणाम नही हैं, वह है केवल संघर्ष की अभिव्यक्ति। किन्तु भोग बाद दानवता मयमानवता का अंश होते हुए भी सर्वथा त्याज्य है, ऐसा नही कहा जा सकता। आखिर दानवता का भी अंश मानव—जब तक मानव है, तब तक उससे रहेगा ही। उसे तो दानवता और देवत्व दोनों से अपना सम्पर्क बनाये रखना है और इसी मे उसके उद्देश्य की सार्थकता है। जिस प्रकार देवत्व प्राप्त करते करते मानवता सर्वथा विलीन हो जाती है और उसके स्थान पर देवत्व ही प्रकट होकर बना रह जाता है, उसी तरह वह दानवता भी बन सकती है। ये दोनों ही अवस्थाएँ मनुष्य के लिये अस्वाभाविक हैं; क्योकि तब मनुष्य मनुष्य नही रह जाता, वह हो जाता है देव या दानव। परन्तु प्रभाशङ्कर, मनुष्य को मनुष्य ही रहने दिया जाय। इसी में उसकी सार्थकता है।

तुमने प्रेम के जिस आदर्श की ओर अपने पिछले पत्र में संकेत किया है, उसी के मूक आह्वान से मेरे अन्तर मे भाव जाग

उठे हैं, और इनके परिणाम स्वरूप मैं सोचने लगा हूँ कि मुझे सबसे पहले मनुष्य बनने की कोशिश करनी चाहिये। मैं चाहे किसी तरफ भी बढ़ने का प्रयत्न क्यों न करूँ, किन्तु मेरे शरीर की क्षुधा की जो पुकार है और उसे मैंने जिस रूप में सुना है, उसे देखते हुए यह कठिन जँचता है कि मैं अपने पूर्ण मानवीय—और एकमात्र मानवीय तत्वों को लेकर देवता बनने का प्रयोग करूँ। मैं शायद अपनी इस क्रिया में असफल हो जाऊँ; और बल्कि 'शायद' की भी गुंजायश इसमें नहीं है।

लेकिन मैं क्या करना चाहता हूँ, यह अभी स्पष्ट नहीं देख रहा हूँ। नीलमरानी का प्रेम सत्य है, केसर देवी की साधना भी सत्य है और साथ ही प्रेम की जो व्याख्या तुमने अपने पत्र में की है वह भी पूर्ण सत्य है। ऐसी दशा में किसे अपनाऊँ? और उस दशा में जब कि इन तीनों सत्यों का विरोधाभास भी उतना ही सत्य है।

अपना निर्णय फिर लिखूँगा। विनोदिनी देवी को नमस्ते। उनका स्त्रीत्व तो शायद मेरी इस उलझन पर हँस पड़े, मगर तुम्हारा पुरुषत्व ? क्या तुम लज्जित हो रहे हो ?

तुम्हारा अपना ही,

प्राणनाथ।

आगरा

नीलारानी,

केसर देवी ने कहना प्रारम्भ किया, "सारी दुनिया सो रही थी चम्पा बीबी, संसार में जाग रहे थे दो प्राणी—केवल दो प्राणी। बन का पागल पपीहा 'पी कहाँ' की रट लगा रहा था और मैं···मैं अभागिनी अपने घर मे—अपने स्वामी के घर से सूखते हुए जलाशय की नन्ही मीन हो रही थी! हायरे यह असहायता!

सन्ध्या की बात है चम्पा बहन, अपना समस्त साहस बटोर कर मैं उनके ड्राइङ्ग रूम में गयी, उस समय वे एक कहानी पढ़ रहे थे। पैरों की आहट पाकर उन्होंने एक बार मेरी ओर नज़र उठायी, परन्तु फिर उसी में डूब गये। क्षणभर तक रुकने के बाद मैं सिसकने लगी। किसी तरह भी तसल्ली न होती थी। सिसकना वे भी सुन रहे थे। मैं कुछ बोली नहीं आवाज़ ही न निकलती थी। परन्तु उनसे न रहा गया। उन्होंने कहा—"असंभव है केसर! हमारे तुम्हारे जीवन का संयोग अब एकान्त असम्भव है।"

"असम्भव,·····मैं रो पड़ी मेरा गला रुँध गया।

"तुम्हारा यह सब रोना गाना व्यर्थ है। मैंने कितनी बार कह दिया कि पुरुष अपनी पत्नी को·····यह भाषा सुनने में यो चाहे जितनी भी असभ्य हो, परन्तु है यह सत्य बात। तुम्हारा पति होकर भी जब तुम्हारी पूजा का अधिकारी कोई और हो, तब तुम्हारी साधना का बाधक मै क्यों बनूँ?"

"तुम यह क्या कह रहे हो स्वामी! मेरी साधना के सब कुछ तुम्ही हो, तुम्हें छोड़कर किसी और की छाया से भी मै घृणा करती हूँ!"

वे रूखी हँसी में बेतहाशा हँस पड़े। वह उन्मत्त हँसी आज भी मेरे कानों में गूँज उठती है चम्पा बहन और मैं सहम जाती हूँ। आकाश में कभी बादल गरज उठते और कभी बिजली कौंध जाती। परन्तु मेरा ध्यान इन सब बातों की ओर नही था चम्पा, कमरे में चारों ओर प्रकाश फैला था, परन्तु जी करता था कि चम्पारानी की प्रकाश की एक भी किरण शेष न रह जाती और मुझे चारों ओर से अन्धकार घेर लेता! काश! मेरे प्रभु—मेरे प्राणों के अन्यतम स्वामी भी मुझे न देख पाते! बन का पपीहा रह रह कर समाधि भंग कर देता था। मैंने सारा साहस बटोर कर कहा, "क्या आज्ञा होती है मेरे मालिक?"

"मैं तुम्हारी सूरत से भी घृणा करता हूँ। मुझे ऐसा मालूम होता है कि यह स्थान हम दोनो के लिये नहीं है केसर। अब तो इस स्थान पर एक ही प्राणी रहेगा—तुम या मैं। और इसके निर्णय का भार तुम स्वयं नही लेतीं, तो मुझे लेना ही पड़ेगा।"

"एक दूसरे से अलग रहकर भी क्या हम लोग—दोनों यहाँ नहीं रह सकते स्वामी?"

"असम्भव है केसर, असम्भव है," उन्होंने दृढ़ता के स्वर में कहा "तुम्हारी जैसी देवी के साथ मेरा निर्वाह भी होना कठिन है। मुझे तो कोई इस लोक की नारी चाहिये केसर।"

'उनके शब्दों में व्यंग्य साफ झलक रहा था। मैं मर्माहत हो उठी। ऐसी चोट तो उनकी स्पष्ट लाञ्छनाओं में भी नहीं थी चम्पा बीबी।

'मैंने धीरे से पैर उठाया और अपने कमरे में चली गयी। उन्होने किस समय दृष्टि उठायी और किस समय देखा कि मैं वहाँ नही हूँ—मैं यह सब नहीं जानती। परन्तु सच तो यह है चम्पा कि मैं उस समय कुछ भी नही जानती थी, सारी चेतनाओं से रहित हो रही थी।

× × ×

'अन्धकार होने के पहले सूरजकी किरणें जो एक प्रकार का प्रकाश वसुधा पर फेंकती हैं, उसमें इस जगत के लिये एक भैरव उप-

हास के अतिरिक्त और क्या रहता है ? मेरी भी परिस्थिति ठीक ऐसी ही थी। बुझ रहे दीपक की अन्तिम लौ की तरह मेरे देवता ने जब एक करुण उपहास की चोट मार सदा के लिये भाग्य का फैसला कर दिया तो अभागे जीवन में एक ऐसा अन्धकार उमड़ा कि मेरी सारी चेतना-शक्ति, समूची दुनिया डूबने उतराने लगी, उस गहन अन्धकार में, दूर तक थपेड़े मारकर हहराते हुए दुर्गम वारिधि का किनारा देखना असम्भव था चम्पा रानी; उस सूनेपन में अपनी निरुपाय और निष्प्राण बाहें फैला कर एक बार टटोला, दूसरी बार, तीसरी बार—बार बार ! परन्तु कौन पाता है, उस अगम समुद्र का छोर ! चुपचाप मैंने छोड़ दिया अपने को चंचल लहरियों पर। उस समय समूचे अन्धकार की साँय साँय को केवल झींगुरों की झन्कार ने मुखरित कर रखा था। सारी दुनिया सो रही थी। समीर के थके हुए चरण अपमानित वाञ्छा की तरह बाहर निकलने का साहस नहीं कर रहे थे।

सुप्त वनस्थली के मूक अन्तस्तल को चीरती हुई, अचेत प्राणों को भयावनी चेतावनी देनेवाली वह झंकार हृदय में न जाने कैसे भाव भर जाती ! न जाने किस तरु पर बैठा पपीहा वही पी कहाँ...हाय री वह ध्वनि ! न जाने कितनी बार यह पागल ध्वनि प्राणों से टकरा उठी चम्पा बीबी। पर मैं किससे कहती ! मैं इसे कैसे दुहराती ? दुहराने पर भी इसका उत्तर

देनेवाला कौन था ? झींगुरों का विलाप और पपीहा की पुकार एकबार—एकबार इनसे भी स्वर मिलाने का—अपने टूटे और उलझे हुए स्वरों को मिलाने का प्रयत्न किया, परन्तु कितनी विषमता थी उनमें चम्पा, प्राणों के भीतर बैठकर सबके घट घट के भीतर के जाननेवाले अन्तर्यामी के अतिरिक्त इसे कौन सुने !

'जीवन की पगदण्डी पर खड़े होकर जब आदमी क्षितिज के चारों ओर ताकने पर भी कोई निर्णय नहीं कर पाता, उस समय जब मानव-जीवन की सारी शक्तियाँ 'हाँ' और 'ना' के बीच उलझ कर अपना ही संहार करने लगती हैं, उस समय किसी सच्चे रास्ते की ओर आत्मा की प्रेरणा बहुत ही मूल्यवान होता है चम्पारानी, और यदि उस समय प्रभु के अँगुलि-निर्देश की ओर नजर उठ जाय तो यही जीवन की सबसे बड़ी विजय होती है। मानव जीवन की ऐसी विजय—ऐसे विजेता कितने हैं?

'रात के इस घोर सन्नाटे में अकस्मात् न जाने कहाँ से झंझा-वात चल पड़ा—कुञ्जों को झकझोर कर न जाने कितनी कटा-रियाँ झनझना गया। यहाँ भी एक झंझावात डोल रहा था चम्पा रानी! प्राणों का प्रत्येक तन्तु हिला जाता और न जाने क्यों, न जाने क्यों चम्पा रानी, अकस्मात् उठ खड़ी हुई और घर से निकल पड़ी......!"

"घर से निकल पड़ी ?"

"पहले सुनो चम्पा रानी! घर से निकल पड़ी। इस घर में दो प्राणियों के लिये जगह नहीं! उनकी यह वाणी रह रहकर गूँज जाती! सोचती थी, दो प्राणियों की बात उन्होंने क्यों कही? बात तो केवल एक प्राणी की थी। एक ही—केवल एक प्राणी के लिये जगह नहीं थी!

'घर से पैर निकालते ही बिजली कौंध उठी। चञ्चला के उस क्षणिक आलोक में ऊपर नीचे, जहाँ तक दृष्टि पहुँची, देखा—देखा घोर अन्धकार की उस मलिन परिधि के भीतर मैं ही—केवल मैं ही अकेली बढ़ती जा रही हूँ। प्रकाश की एक भी रेखा मुझ अभागिनी का पथ-प्रदर्शन करने के लिये नहीं थी! मेरे साहस पर थोड़ा सा आघात लगा। परन्तु तत्काल ही सोचने लगी; भगवान के लीला-मन्दिर में आज जो यह अनोखी घटना होने जा रही है, प्रकृति भी उसे सँवारने के लिये कितनी उत्सुक है। मानव आँखें मुझे—मेरी काली काया को भी न देख सकें, इसी लिये तो रजनी की यह तमसाकार घना आवरण चारों ओर से चढ़ा हुआ है!! नीचे काली वसुधा, ऊपर मेघ-मालाओं की काली चादर और चारों ओर अन्धकार की उमड़ती हुई व्यापक लहरें!! मैं एक बार काँपी और फिर मुसकिरा पड़ी! जीवन की ऐसी क्षमता, मेरे हृदय पर उमड़ती रहनेवाली घन-राशि भी तो ऐसी ही थी......!!

'मेरे पास कुछ भी नहीं था। घर से निकल पड़ी थी बिलकुल अकेली। मेरे पास दुनियाँ की नज़रों से छिपाकर निकाल ले जाने के लिये केवल मेरे पाप थे·····! अपने जीवन के सबसे बड़े देवता—चम्पा रानी, उन्हे मैं एक क्षण के लिये सन्तुष्ट न कर सकी थी! कैसा पापमय जीवन था मेरा!

'पैर बढ़ते जा रहे थे! वसुधा की यह शान्ति कभी-कभी खलने लगती। रह रहकर अपनी ही पद-ध्वनि सुनायी पड़ने लगती! अगर चाहती ··अगर चाहती चम्पारानी तो प्राणों का प्रत्येक स्पन्दन गिन लेती! प्रथम मिलन की रात की ही भाँति यह नीरव रजनी कितनी शान्त पर साथ ही कितनी आन्तरिक चञ्चलतापूर्ण थी। इसकी कल्पना केवल जुगनू लगा पाते और लगा पाते केवल धरातल पर सोये हुए रजकण! रजकणों का भी इतिहास, कितना दारुण है उनका इतिहास चम्पारानी, संसार के कितने ही सिंहासन, न जाने कितने गर्व और गौरव, न जाने कितने सुख और सौन्दर्य, न जाने कितने वैभव और विभूतियाँ और न जाने कितने हास्य और रुदन, न जाने कितने मान और अपमान और न जाने कितने शाप और वरदान उनसे लिपटे पड़े हैं! चाँदनी रात में तारे उनपर व्यंग्य किया करते हैं और अन्धकार उन पर एक विभीषिका का आवरण चढ़ा जाता है; परन्तु वे अभागे रजकण विश्वके पदाघातों को सहते हुए दरिद्र की

आकांक्षा की तरह दलित से पड़े हैं। उनकी परवाह किसे है! कौन पूछता है कि उनमें विश्व की कितनी अमर अभिलाषाएँ दलित पड़ी हैं, कितनी दारुण कहानियाँ अपने अतीत पर चुप-चाप आँसू बहा रही हैं। रज-कणों का इतिहास संसार का इति-हास है, उसके सुख और दुख का इतिहास है, महलों के रुदन और खण्डहरों के अट्टहास का इतिहास है। नीरव रजनी की इस अशान्तिमयी शान्ति की कल्पना तो केवल दार्शनिकों के सन्तोष-से जुगुनू अथवा दरिद्रता की आकांक्षा-से रजकण लगा पाते! मैं तो इस पर विचार करते ही काँप उठती! पर.....मुझे काँपने का भी अवकाश कहाँ था चम्पा रानी?

'पैरों में जैसे पर लग गये हों। किस अज्ञात प्रदेश की ओर वे बढ़े जा रहे थे! अदृष्ट किस पथ खींचे जा रहा था, इसका पता पाना उस समय एकान्त असम्भव था। धीरे-धीरे मेघ-माला का दुकूल हटने लगा। मेघमालाएँ तो हटने लगीं—पर मुझ पापिनी के अन्तर पर द्वन्द्व का तो भयानक परदा पड़ा हुआ था, वह ज्यों क़ा त्यों था। धीरे-धीरे आसमान बिलकुल निर्मल हो गया देवत्व की लालसा की तरह; चाँद भी आया, अपने सारे कवित्व से, उस कवित्व की सारी मादकता से, कवि के आकुल हृदय पर रह रह कर उमड़ उठने वाले उच्छ्वास की तरह—आनन्द के आँसुओं की तरह! प्रकाश के इस विराट विश्व में भी

मैं अपने भावुक उच्छ्वासों से न पूछ सकी कि आखिर मुझे वे कहाँ ले जाना चाहते हैं। अन्धकार रहित इस वरदान की भाँति विमल विभावरी में भी मुझे अपनी राह न सूझ पड़ती थी! मैं खड़ी रही मुरझाये हुए बन-कुसुम की तरह; मैं कुछ सोच न सकी अप-राधी प्यार की तरह; कुछ समझ न सकी उपेक्षित प्यार के बेहोश उन्माद की तरह! लेकिन .....

'लेकिन जीवन का यह फैसला कब तक यों ही सोया रहता चम्पा रानी! मुझे एक रास्ता तय करना था। रात अब अधिक नहीं रह गयी थी। पक्षियों के कलरव से समीर की सनसनाहट अपना साम्य मिलाती थी! लेकिन मैं.....लेकिन मैं किससे अपने जीवन का साम्य मिलाती! अभागे प्राणियों को कौन पूछता है इस जगत में! हँसने वालों के साथ सभी खिलखिला पड़ते हैं, परन्तु रोने वालों का साथ कौन दे? और क्यों दे चम्पा बहन! कोई किसी की सहानुभूति में क्यों रोये?"

केसर देवी ने इस कहानी के बीच में केवल एक या दो बार मेरी ओर ताका! मेरे बार बार आग्रह करने पर ही उन्होंने अपनी कहानी शुरू की थी। जब उन्होंने कहा कि कोई किसी की सहा-नुभूति में क्यों रोये? उस समय अपने मनोभावों को दबा रखने में मैं बिलकुल ही असमर्थ हो गयी। कहानी के आरम्भ से ही जो पीड़ा उठ रही थी, वह आँखों की राह बह चली!

"अरी चम्पा बहन" मुझ पर नजर डालते ही उद्वेलित स्वरों में वे बोल उठीं "तुम रो रही हो" ?

ये रोने के दिन नहीं हैं बहन! अब तो वह काली रात भी कट गयी है और चन्द्रमा का वह प्रकाश भी! अब मुझे इन दोनों में से किसी की आवश्यकता नहीं है।

उन्होंने बहुत जोर लगाकर मुसकिराने का प्रयत्न किया। आँसुओं के बीच में उनकी वह मुसकिराहट कलेजे में कैसी पीड़ा कर रही थी नीलम, भीगी हुई उनकी बरौनियों पर आँसू के कण झलक रहे थे। केसर देवी का वह व्यथित और करुण सौन्दर्य हाय! कितनी सुन्दरी लगती थीं वे उस समय! जी करता था, तत्काल इनके चरणों में सिर नवा दूँ! सौन्दर्य और तपस्या, रुदन और मुसकान एक साथ और एक ही प्राणी में—और केसर देवी जैसी रूप की रानी में·····, तो क्या इस जीवन की—मानव जीवन की सफलता और विफलता का रहस्य केवल भगवान की भाग्य-रेखा ही पर अवलम्बित है नीला रानी!

"मैं कहती हूँ," मैंने केसर देवी से कहा "मैं कहती हूँ, कि आपके पतिदेव किस ढंग के प्राणी हैं; मैं तो एक साधारण स्त्री हूँ, और मेरे पतिदेव सर्वथा..."

"तुम उनकी आलोचना क्यों करती हो बहन! यह मेरे दुर्दिनों का दोष है। मेरे वे भी कम सुन्दर नहीं हैं। खूब स्वस्थ और

सुन्दर! उनकी आँखों में एक कला है और चितवन में एक माधुरी। उनके ऐसे पुरुषको रमणियाँ देखते ही प्यार न करें यह असम्भव है, चम्पा बीबी।"

"लेकिन बहन केसर, क्या उनके इस कार्य को कोई भी उचित बता सकता है कि उन्होंने केवल सन्देह पर तुम्हें परित्याग कर दिया?"

"उन्होंने? कहा कहती हो तुम? उन्होंने तो मुझे कभी भी छोड़ा नहीं चम्पा, मैं तो स्वयं उनके पास से चली आयी!"

"परन्तु वे तुम्हें प्यार तो नहीं······।"

"करते थे या नहीं, यह भी कैसे कहूँ? शायद करते हों वे मुझे प्यार करते थे, शायद इसीलिये मुझमे जरा भी कमी—जरा भी बुराई पाकर असन्तुष्ट होगये हों! यह बात तुम अच्छी तरह समझ लो बहन कि जब एक प्राणी किसी दूसरे को हृदय से प्यार करता है, उस समय वह उसमें एक भी कमी—एक भी बुराई नहीं देखना चाहता। उसकी सबसे बड़ी कामना यह रहती है कि वह पूर्ण बने। संसार उसमें एक भी बुराई ढूँढ़ कर भी न निकाल सके। यह ज़रा ऊँचे दर्जे के प्यार की बात कह रही हूँ और जीवन में क्या ऐसे प्रसंग आये ही न होंगे चम्पा बीबी? जरा सोचो तो कि तुम्हारे पतिदेव में यदि कोई बुराई हो तो क्या वह तुम्हें अच्छी लगेगी?"

"मैं आपसे तर्क नहीं करती। तर्क से मैं हमेशा दूर ही रहना चाहती हूँ। मेरा विश्वास है कि तर्क से सत्य की प्राप्ति नहीं होती। तर्क की विजय और पराजय केवल तार्किक की योग्यता और अयोग्यता पर निर्भर रहती है। ऐसी दशा में इस प्रकार की विजय या पराजय का भी मैं कोई महत्व नहीं मानती!"

"मैं भी तो सीधी ही बात कह रही हूँ। तर्क से मनुष्य सत्य के नजदीक नहीं पहुँचता, ऐसा तो मैं भी सोचती हूँ। फिर भी तर्क का एक स्थान है और जीवन के साधारण कामों के लिये इसकी आवश्यकता भी है। हाँ, कोई असाधारण बड़ा काम हो तो और बात है, उस समय तर्क काम नहीं देता, उससे काम लेना भी न चाहिये। असाधारण कार्यों का निर्णय तर्क नहीं कर सकता। उस समय तर्क-पूर्ण विश्लेषण के आधार पर निकाला हुआ निष्कर्ष भ्रमात्मक और पातक हो सकता है और......

"और मजा तो यह है कि तर्क के विरुद्ध हम दोनों ही हैं फिर भी कर रही हैं तर्क ही। इस तर्क को छोड़ो बहन, अपनी कहानी का सूत्र वहाँ से पकड़ो, जहाँ तुमने कहा था न "मैं तो स्वयं उनके पास से चली आयी!" फिर आप गयीं कहाँ? इन्हीं गुरुदेव के आश्रम में?"

केसर देवी कुछ कहने ही जा रही थीं नीला कि गुरुदेव की आवाज बाहर सुनायी पड़ी! वे उठ खड़ी हुईं! कहानी का तार टूट गया!

पिछले दो पत्रों में इन्हीं की कहानियाँ लिख कर भेजी हैं मेरा प्रत्येक पल इन्हीं विचारों से आबाद हो रहा है। इनकी कहानी का प्रत्येक शब्द कानों में गूँज रहा है। जिस समय ये अपनी कहानी कहने लगती हैं, उस समय अपने को रोक रखना कठिन हो जाता है! इनके मुख-मण्डल पर एक अद्‌भुत दीप्ति है, अद्‌भुत बल है। और हम लोगों के जीवन के लिये बहुत से सन्देश हैं।

मेरा पिछला पत्र तो मिल गया होगा, फिर चुप क्यों हो ?

तुम्हारी ही,

चम्पा।

आगरा,

सन्ध्याकाल

बहन नीलम,

तुम्हारे कृपा-पत्र के लिये अनेक धन्यवाद। देवता तुम पर कृपालु दिखायी पड़ रहे हैं। तुम्हारे मनोभावों को सौन्दर्य की जो एक कोमल धारा अपने मादक स्पर्श से नहला जाती है, वह कृपालु देवताओं के आशीर्वाद का ही फल है नीलम, और इसके लिए हमें देवताओं का अभिवादन करना चाहिये। आज मैं तुम्हारी कोमल भावनाओं को सुरक्षित बनी रहने के लिये देवताओं को धन्यवाद देती हूँ, तुम जानती हो बहन, तुम्हें मैंने केवल एक सहेली ही कभी नहीं समझा। तुम सदा से मेरी छोटी बहन-सी ही रही हो और वही तुम आज भी हो।

तुम्हारी लालसा—उनकी भुजाओं में स्वप्नों में कोमल गीत—पर ऐसी बुलबुल जिसके पैर बँध गये हों,......प्रेम के कम्पन की भाँति आज तू किन भावों में उभ-चुभ हो रही हो? तुम्हें आज

मादक फेनिल लहरियाँ स्पर्श करती मालूम होती हैं और तू आज 'रोमान्स' की भूखी दिखायी पड़ रही है !

पर नीलम तूने प्राणनाथजी को मेरे सम्बन्ध में क्यों लिख भेजा ? "चम्पा बहन को मैं इतना प्यार करती हूँ जितना मैं श्रीप्रभाशङ्कर की विनोदिनी की मुसकिराहट को प्यार करती हूँ और जितना विनोदिनी मेरी वेणी को प्यार करती है और जितना चम्पा बहन मेरी आँखों को प्यार करती हैं।" न छूटा तेरा लड़कपन अभी। इन शब्दों में भला प्राणनाथजी को लिखने की क्या आवश्यकता थी री ? और मैं क्या केवल तेरी आँखों को ही प्यार करती हूँ ? तेरे अधर, तेरे कपोल और नासिका—भी सभी तो मुझे प्यारे लगते हैं ! लेकिन देखना कहीं यह भी न लिख डालना पगली ! भला वे क्या समझेंगे "और चम्पा बीबा की खूबसूरती, उनके सामने मैं फीकी लगने लगती हूँ—धरातल पर उतरी हुई अप्सरा हैं—उर्वशी पृथ्वी तलपर आयी है।" सचमुच क्या तूने यह भी लिख डाला है री ? नादान, कहीं ऐसा भी लिखा जाता है ?

पर प्राणनाथजी ने तो इसका उत्तर क्या दिया होगा। यह भी क्या कोई उत्तर देने की बात है ?

रमला के पति बनारस से आगये हैं। सुन्दर युवक हैं नीलम, मैंने तो उस दिन पहली बार उन्हे देखा। मैंने तुम्हें अपने किसी पत्र

में लिखा था न कि रमला को एक बार उसके पति ने बनारस से चूड़ियाँ भेजीं तो बेचारी सिसक-सिसककर रोने लगी। लोगों को इससे बड़ा आश्चर्य हुआ पर इससे भी अधिक आश्चर्य लोगों को तब हुआ जब उसने कहा कि उसके पतिदेव उसे प्यार बिलकुल नहीं करते। और इसी लिये उसके लिये चूड़ियाँ भेजी हैं।

तो रमला के ये पति मुझसे आज मिलने आये थे। केसर देवी भी थीं। रमला को भी इस गोष्ठी में शामिल करने की मेरी बड़ी इच्छा थी, पर वह आयी नहीं। चन्द्रशेखर ने भी विशेष जोर न दिया। यही चन्द्रशेखर रमला के पति का नाम है।

चन्द्रशेखर बड़ी देर तक बैठा रहा। बड़े ढङ्ग से बातें करता रहा। मेरे लड़के को उसने एक लाल पेन्सिल दी है। केसर देवी उसमें खूब 'इन्टरेस्टेड' हुई हैं। उसके बात करके चले जाने के बाद भी उसकी प्रशंसा करती रहीं। तुम्हे इस जगह एक बात और यह बता दूँ कि केसरदेवी की प्रशंसा का कुछ मूल्य है नीलम। केसरदेवी खूब सुन्दर हैं। विचार भी बड़े अच्छे हैं। यद्यपि सादे कपड़े में रहती हैं, पर अधरों पर अब भी जो मुसकिराहट आती है वह आकर्षक है। अभी अवस्था भी तो बहुत कम ही है। यह वह अवस्था है जिसमें यौवन खूब फूट पड़ता है—जवानी अङ्ग-अङ्ग में लहरा उठती है। केसर और चन्द्र-शेखर दोनों एक दूसरे की ओर आकर्षित हुए हैं नीलम, यह

बात मैं अवश्य कह सकती हूँ। देखती थी केसरदेवी की बातें मन्त्रमुग्ध होकर चन्द्रशेखर सुनता और ऐसा मालूम होता जैसे अपने वर्षों के बने हुए विचार को भी वह केसरदेवी के विचारों से सामञ्जस्य मिलाने के लिये बदल देगा। मैं भी थी। पर मुझे सुनने में इतना आनन्द आ रहा था कि अधिक बोलना अनावश्यक समझा। दोनों खूब खुलकर बातें करते थे। कल हमलोग फिर मिलेंगे। और फिर बातें होंगी। केसर देवी ने रमला को भी लाने के लिये कहा है और चन्द्रशेखर ने हँसते-हँसते अनिच्छा-पूर्वक स्वीकृति दे दी है, हालां कि मेरी और केसर दोनों का मत है कि वह लायेगा नहीं!

केसर और चन्द्रशेखर बातें कर ही रहे थे कि प्रसङ्ग बड़ा विचित्र उठ पड़ा। चन्द्रशेखर ने कहा, "मेरा विश्वास है कि संसार से विवाह पद्धति सदा के लिये उठ जायगा और तब भेड़ बकरियों की भाँति आज जिस किसी को जो एक दूसरे के गले लगा दिया जाता है उसका अन्त हो जायगा।"

"अर्थात् तब लोग स्वयं भेड़ बकरी की भाँति एक दूसरे से मिल जायेंगे!" केसर ने कहा।

मेरा ख्याल है कि चन्द्रशेखर अपनी बीबी से असन्तुष्ट है तभी ऐसा कह रहा है! पर केसरदेवी ने पुनः कहा, "तभी तो मनुष्य अपने पूर्वजों की नकल कर सकेंगे! पशुता जब तक मानव में रही, तब

तक वह मनुष्य ही क्या ?" केसरदेवी शायद व्यंग्य में कह रही थीं।

"पशु मनुष्य से कहीं अधिक उन्नत प्राणी है देवीजी। मनुष्य की भाँति घृणा, स्नेह, प्रतिहिंसा और स्वार्थ पशु में नहीं दिखायी पड़ता। मनुष्य अपने क्षुद्र स्वार्थों को लेकर जिन संघर्षों में फँसा रहता है, उनसे पशु कितना निर्लिप्त है। एक बार पेट भर दीजिये सन्तुष्ट हो जायगा। यह प्रवृत्ति तो मनुष्य मे ही देखी कि आज पेट भर कर कल के लिये वह हाय हाय करता रहता है।"

"समाज की व्यवस्था जब तक ऐसी रहेगी तब तक तो मनुष्य ऐसा ही रहेगा। वह पशु नहीं बन सकता। उस पर कुछ जिम्मेदारियाँ भी हैं, जिन्हे भूलकर ही वह पशु हो सकता है।"

"कितना अच्छा होता अगर वह मनुष्य ही बनता। पशु में तो फिर भी उसका अपना गुण धर्म पशुता है, पर मनुष्य में मनुष्यता कहाँ रही ? पशु तो फिर भी अपना धर्म पशुता निभाये जा रहा है और वह अपने धर्म से च्युत तभी होता है जब मानव जाति के सम्पर्क में आता है। मनुष्यों ने ही पशुओं को भी भीख माँगना और अपने क्षुद्र-स्वार्थों के लिये लड़ना झगड़ना सिखाया है।"

"मनुष्य पशु को भी सभ्य बना रहा है चन्द्रशेखरजी" केसर-देवी ने कहा "अन्यथा क्या जंगल में शेर और चीते खूँखार

नहीं होते ? उनकी हिंसक प्रवृत्ति तो स्वाभाविक है और मनुष्य तो उस प्रवृत्ति का केवल लाभ कभी-कभी उठाता है।"

"हिंसक और मारात्मक-प्रवृत्ति" चन्द्रशेखर ने कहा, "पर क्या मनुष्य से भी अधिक ? अपने पेट के लिये कौन नहीं संघर्ष करता, पर पेट भर जाने के बाद किस जंगल में खून की नदी बह रही है ? युद्ध और महत्वाकांक्षाओं और राष्ट्रीयता एवं देश-भक्ति के नाम पर आज संसार भर में जिस सामूहिक हत्या की तैयारी की जा रही है वह क्या मनुष्य ने पशुओं से सीखी है? संसार के कोटि कोटि प्राणियों को लूटकर, उनके बच्चों और स्त्रियोंको नंगे और भूखे देखकर भी कुछ थोड़े से प्राणी जो लाखों रुपये आनन्द भोग में उड़ाते फिर रहे हैं, यह सभ्यता भी क्या मनुष्य ने पशुओं से ही सीखी है ? कभी आत्म-सन्तोष और तृप्ति न प्राप्त करना क्या पशुओंका गुण है जिसे मनुष्यों ने अपनाया है ?"

"पशु को इन बातों का कोई 'सेन्स' भी हो ! जब उन्हें कोई सेन्स ही न हो, तब उसके अभाव में अगर वे आत्म-सन्तोष और तृप्ति-लाभ किये बैठे रहें, तो इसके लिये उनकी प्रशंसा क्या की जाय ? स्वतः उन्हे आत्म-ज्ञान ही नहीं है, तब उनकी अज्ञानावस्था की अच्छाई के लिये उनकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। बेशक, अगर जान बूझकर वे ऐसा करते होते तो उनकी

प्रशंसा की जा सकती, पर वे तो कुछ जानते ही नहीं। उनकी यह अच्छाई वैसी ही है जैसी मोशिये जुर्दं* चालीस साल से बिना जाने ही गद्य बोलता आ रहा था।"

"पर अगर आत्म-ज्ञान मनुष्य में इतनी प्रतिहिंसा, इतनी मारात्मक प्रवृत्ति, इतनी घृणा, इतना सन्देह भर दे तो इससे अच्छा तो......"

ठीक इसी समय गुरुदेव ने "केसर देवी—केसर बेटी," कह कर आवाज दी और वे झपटकर बाहर निकल गयीं। जाते जाते उन्होंने कहा, "अभी आयी चन्द्रशेखर जी, अभी।"

और वह आयीं भी तत्काल ही, पर तब तक चन्द्रशेखर चलने को उद्यत हो चुका था। उसने कहा, "मैं सुन रहा था आपकी और गुरुदेव की बात......"

"और मैं तुम्हारी बातें सुन रहा हूँ चन्द्रशेखर," गुरुदेव ने कहते कहते भीतर प्रवेश किया, "कहीं पशुओं ने तुम्हें रिश्वत तो नहीं दी! जो तुम उनकी इतनी बड़ी वकालत कर रहे हो?"

मैंने और केसर—दोनों ने देखा कि चन्द्रशेखर के भरे भरे गालों पर सुर्खी दौड़ गयी। वह चुप ही था पर अकस्मात् विनय-शीलता से बोल उठी केसर—"रिश्वतखोरी में भी तो मनुष्य ही पशुओं से आगे हैं गुरुदेव। पशु तो ऐसी बातें जानता ही नहीं।"

---

* सुप्रसिद्ध फ्रेञ्च नाटककार मोलियर के एक नाटक का एक पात्र।

"तो क्या अब बेटी केसर और चन्द्रशेखर दोनों ही मिलकर मुझसे बहस करेंगे ?"

"तो अब मेरी विजय निश्चित है" चन्द्रशेखर ने संकोच छोड़ते-से कहा।

कि तब तक गुरुदेव बोल उठे—"किन्तु चम्पादेवी को तो तुमलोग भूल ही जाते हो, उनकी सहायता अब मुझे माँगनी पड़ेगी।"

मैं सचमुच लज्जा से गड़ गयी। पर मैंने कहा, "मनुष्य की निन्दा गुरुदेव सिर्फ इसलिये की जा रही है कि मनुष्य वास्तव में अपनी मनुष्यता से गिर गया है, अगर कहीं उसका ऐसा पतन न हुआ होता तो भी क्या चन्द्रशेखरजी मनुष्य की इतनी ही निन्दा करते ? मनुष्य का गिर जाना मनुष्यता को ही दोषी नहीं प्रमाणित करता।"

गुरुदेव के चेहरे पर प्रसन्नता और भी झलक उठी। उन्होंने कहा "बेटा चन्द्रशेखर, चम्पादेवी ने शायद बीच का रास्ता अपनाया है और केसर और तुममें शायद सब 'कम्प्रोमाइज' हो जाय।"

केसर और चन्द्रशेखर ने एक दूसरे को देखा और मुसकिरा कर रह गये। मैंने कहा "इनकी तो 'कम्प्रोमाइज' पहले से हो चुकी है, गुरुदेव !"

गुरुदेव हँसे—सात्विक हँसी, भोली-सी। और इसके साथ ही वे बाहर चले गये। और हमलोगों की गोष्ठी भी भङ्ग होगयी।

कितना अच्छा होता इस वक्त यहाँ तू भी रही होती नीला। और अगर रमला भी होती।

केसर देवी ने कहा है कि मैं तुम्हें उनका प्रणाम लिख भेजूँ और मेरा ख्याल है कि तेरी जैसी भली लड़की उनके आशीर्वादों की हकदार है।

तुम्हारी,

चम्पा

पुनश्च:

केसर देवी तेरे भविष्य में दिलचस्पी रखती हैं नीला और तेरे विवाह के अवसर पर भी उपस्थित रहकर तुझे आशीर्वाद देना चाहती हैं। लेकिन तेरे प्राणनाथ जी क्या एक संन्यासिनी के सम्पर्क में तुझे आने देंगे री ?

उन्हें तो चाहिये, मुझे याद है न ? "मुझे बाल फ्रेञ्च-कट........" तूने ही यह सब लिखा था न री ? क्यों री नीला ?

भाई प्राणनाथ,

भोग और संयम, भाई प्राणनाथ, भोग और संयम को लेकर इतने तुम उलझ क्यों उठे हो ? जीवन के यह दोनों तत्व आज अगर तुम्हें इतना उलझा रहे हैं तो क्या मैं यह समझूँ कि प्राणों के भीतर कहीं ऐसा भी स्थल है जहाँ यह अन्तर्द्वन्द्व अब इतना स्पष्ट हो चला है कि बाहर निकल आना चाहता है ! एक बात कहूँ । संसार के कितने ही ऐसे तत्व हैं जो हमारे प्राणों को एक साथही स्पर्श करते हैं और यद्यपि ऊपर से ऐसा प्रकट होता है कि वे परस्पर-विरोधी हैं, पर वास्तव में वैसे होते नहीं । जिससे तुम घृणा करते हो उसी को क्या तुम प्यार नहीं करते ? आखिर किसी को तुम जो इतने भीषण अंश तक घृणा करने लग जाते हो, उसमें क्या तुम्हारे वे मनोभाव काम नहीं करते रहते जिन्हें तुम्हारे घृणास्पद वस्तु की याद सतत बनी रहती है ? संयम के विरुद्ध जब तुम इस तरह जेहाद छेड़ बैठे हो तो स्पष्ट है कि भोग के सिद्धान्त में कहीं एक जगह ढिलाई है जो रह रहकर संयम पर सोचने के लिये विवश कर देती है; या यों भी कह सकते हैं

कि संयम में कहीं एक ऐसा भी आकर्षक स्थान है जो भोग के सारे आकर्षणों के बीच में चमक उठता है और तुम्हारे-जैसा भोगवादी भी उस तरफ खिचे बिना रह नहीं सकता। आखिर तुम अपने भोगवाद को लेकर ही क्यों नहीं संतुष्ट होकर बैठे रहते, क्यों संयम को दुनिया से मार भगाने के लिये तुल पड़े हो? जितना ही तुम भोगवाद के समर्थन की ओर झुकते हो उतना ही संयम की निन्दा करने लगते हो। आखिर क्यों? तार्किक जिस बात का खण्डन जितने ही जोर से करता है, उतना ही उसे वह मजबूत मानता है—ऐसा सोचना स्वाभाविक जॅचता है न? चारों ओर से सेना लेकर जब तुम संयम पर वार करते हो तो उसकी मजबूती का समर्थन तुम स्वयं कर अपनी वाणी से नहीं—अपने कार्यों से करते हो, ऐसा अगर मैं निर्णय करूँ तो क्या यह अनुचित होगा? और अगर अनुचित भी हो तो क्या अस्वाभाविक भी होगा?

और मानव का चरम लक्ष्य? लेकिन इस चरम लक्ष्य के प्रश्न का क्या एक ही उत्तर सम्भव है? और समस्त मानव जाति के लिये और व्यक्तिगत रूप से भी समस्त मानव के लिये? चरम लक्ष्य की दिशा मे हमारे कितने कार्यों का रुख रहता है? और यह लक्ष्य कब, किसके सामने, कितना स्पष्ट रहा?

किन्तु अपने तर्कों की धारा तुमने जिस दिशा की ओर

प्रवाहित की है, उसी ओर मुड़ चलूँ तो कहूँगा कि अगर मानव देवत्व प्राप्त करते करते उसे प्राप्त ही कर ले और इस प्रकार अपना सम्पूर्ण मानव-अस्तित्व खो बैठे तो शायद अपनी इस क्षति पर उसे आँसू न बहाना पड़े ! इस देवत्व-प्राप्ति पर मानव जाति को आँसू बहाने की आवश्यकता न पड़ेगी ।

लेकिन सच तो यह है कि मैं संयम और भोग इन दोनों को साथ लेकर चलना चाहता हूँ । यह न सोचो कि दोनो में कोई सामञ्जस्य नहीं ; बाहर से यह पैरा डाक्स (Para dox) जैसा जँचे, पर वास्तव में ऐसा यह है नहीं । भोग अकेले ही संसार में नहीं जी सकता, इसे तो मैं भी मानता हूँ । बल्कि इसी के साथ मैं तो यह भी मानता हूँ कि संसार में योग की अपेक्षा भोग ही अधिक जीवित हो रहा है । भोग की आकांक्षा हममें एक प्राण-चाञ्चल्य भर देती है और वह प्राण-चाञ्चल्य हमें स्वप्नों के एक सुन्दर लोक में फेंक देता है—उस लोक में जिसमें जैसे पतझड़ होता ही नहीं, सदा वसन्त के ही झोंके आया करते हैं; उस लोक में जिसका निर्माण जैसे किन्नरियों और परियों ने अपने हाथों से सौंदर्य के झिलमिले तारों से किया हो और जिसमे जीवन की सारी आकांक्षाएँ सफलता के वरदान की छाया के नीचे आनन्द की उनींदी-निद्रा में उभ-चुभ हो रही हों । ऐसा है वह लोक जिसकी सृष्टि उस समय हमारे मधुर स्वप्नों की

राह में होती दिखायी पड़ती है जब हमारे संयम की गाँठ कहीं से खुली-खुली मालूम होती है और तज्जनित उत्साह की सचमुच एक ऐसी स्थिति होती है जो जितनी आकर्षक है उतनी असत्य थी। असत्य इसलिये कि इसकी वस्तुतः कोई सत्ता नहीं—कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं। वास्तविक अस्तित्व पर उलझो मत। कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार को जो भावनाएँ हृदय पर उमड़तीं हैं, वे उन बादलों की तरह ही हैं जिनका जल से कोई पृथक अस्तित्व नहीं है। जल का ही एक रूप है बादल—केवल एक आकार; अपना कोई खास तत्व लेकर उठने और उमड़नेवाला नहीं।

और भोग की आकांक्षाओं को भी ऐसा ही क्यों न मान लूँ?

तर्क करोगे? जी, तर्क तो करोगे ही। तर्क-ज्ञान जिस बुद्धि पर अवलम्बित है वह मानव-विकास के मार्ग का सबसे महत्व-पूर्ण अवदान है। पर सच तो यह है कि मानव-बुद्धि अभी उस स्टेज पर नहीं पहुँच सकी है जहाँ रुककर हम अपने सारे प्रश्नों पर प्रकाश देख सकें। शायद कभी हो। और हो तो, जैसा कि तुम कहते हो कि इससे अन्ध-विश्वास नाम की भीषण भ्रान्ति का अन्त हो जायगा, वास्तव में हो जायगा। पर ऐसा भी सम्भव है कि जिन्हे आज हम इन भ्रान्तियों के रूप में पा रहे हैं वही बुद्धि और तर्क का सम्बल पकड़ कर खड़ी हो जाएँ तो हम उन्हें

ही सत्य मानने लगें। उस समय हम उन तर्कों को क्या कहेंगे?—उन तर्कों को जो आज के अन्ध-विश्वासों को ही ऐसा मज़बूत सहारा दे देंगे? तब क्या हम बुद्धि और तर्क को भी अन्ध-विश्वास कहकर उपेक्षित कर देंगे—जिस तरह आज अन्ध-विश्वास उपेक्षित हो रहे हैं?

लेकिन इन विवादों को यहीं छोड़कर—तुम्हारे योग और भोग के द्वन्द्व को यों ही टालकर तुमसे अपने एक आश्चर्य को ही कहानी क्यों न कह दूँ। आश्चर्य है कि तुम्हे अपनी पत्नी का पता जब इतने दिनों से चल चुका है, तब तुम उनसे मिल क्यों न सके! क्या तुमने एक दिन भी जाकर उनसे अपने भूलों के लिये क्षमा माँगी? पत्र व्यवहार कर रहे हो—दिल का राज़ खोलकर रख रहे हो, बड़ी बड़ी समस्याएँ उलझन में डाल रही हैं और ऐसी समस्याएँ जिन्हें सुलझाने में केसर देवी से कुछ सहायता मिल सकती है, फिर भी तुम उनसे मिल न सके! आज तक—इतने दिनों तक पृथक् रहने के पश्चात् पता लगते ही उनसे मिलने की प्रवृत्ति स्वाभाविक होती, किसी भी मनुष्य के लिये; और उस दशा में जब कि वे उस महर्षि के आश्रम में हैं जो आज ,भारत क्या, संसार भर में अपनी ख्याति लिये भारत का मुख उज्ज्वल कर रहे हैं और जिसमें पुरुषों की तरह अन्यान्य देशों की कितनी ही नारियों को भी अपने मानवीय गुणों के विकास के साधन प्राप्त हो सके

हैं। यह अस्वाभाविक बातें हैं कि तुम उनसे मिल क्यों न सके! कहानी-लेखक का कोई ऐसा कथानक आलोचक की नजर में घोर अस्वाभाविक होता, पर जीवन के कितने ही सत्य शायद काल्पनिक घटनाओं से भी अद्भुत होते हैं।

शायद तुमने सोचा हो कि अकस्मात् यों ही मिलना अनुचित हो। केसर देवी न जाने क्या सोच बैठें। उनके दिल की थाह ले लेना ही शायद तुमने पहले जरूरी समझा हो। तुम्हारा स्वाभिमान भी,—भले ही वह गलत आधारों पर अवलम्बित हो—कृपया इस वाक्य के लिये क्षमा कर देना,—तुम्हारे उनसे मिलने के विचार में बाधक हुआ हो और कदाचित् आज भी तुम्हारे दिल की वे धारणाएँ बदली न हों, अथवा तुम अपनी भूल को इतनी बड़ी समझते हो कि एक प्रकार की कायरता-सी तुम्हारे साहस को आच्छन्न कर डालती हो!

यह सब सन्देह हैं जो तुम्हारी अस्वाभाविक बातोंको जन्म देते हैं, लेकिन मैं सोचता हूँ कि इस प्रकार के सन्देह कर मैं तुम्हारे साथ अन्याय क्यो करूँ? पर तुम्हारी कहानी का आलोचक आखिर क्या समझेगा?

मगर भाई एक बात; मालूम होता है मिस नीलम कुमारी मिसेज प्राणनाथ बनने के लिये बहुत उत्सुक हो रही हैं। मैं अपनी पत्नी के साथ विश्वासघात तो नही करना चाहता, उनकी

बातें तुम्हें बताकर; पर उनके पास मिस नीलम कुमारी का एक पत्र आया है जिसमें उन्होंने हम लोगों को शीघ्र ही अपने विवाह के अवसर पर देखने की आशा प्रकट की है। "मेरी ओर से विनोदिनी बहन, उन्हे भी निमन्त्रित कर देना होगा" उनके शब्द हैं और प्राणनाथ, अगर तुम लिखो तो मैं भी तुम्हारी ओर से उन्हे निमन्त्रित कर दूँ।

कर दूँ ?

तुम्हारा अपना,

प्रभाशङ्कर।

यह पोस्ट स्क्रिप्ट लिखे बिना जी मानता नही। केसर देवी से तुम एक बार जाकर मिलो न। उनके प्रति तुम्हारी भ्रान्त धारणाएँ अभी टली नही ?

प्यारे प्रभाशङ्कर,

जिस समय यह पत्र मैं लिख रहा हूँ, बाहर फुहारे पड़ रहे हैं और खिड़कियों को झकझोरकर हवा शीशों पर तमाचे जड़ जाती है। भीतर उस खड़खड़ाहट के साथ एक सन् सन् आता और इतना शीतल कि लिहाफ के भीतर से शरीर हिला जाता है। खिड़की के काँच पर शीतल बूँदें जमतीं और फिर क्षणभर तक रुक कर पिघल कर नीचे बह जाती हैं! मेरी उँगलियाँ कलम पकड़ने में रह रहकर असावधान हो जाती हैं, ओह! अभी कमरे में शीत फेंक कर झकोरे फुहारों को लेकर एक साथ ही किसी और तरफ उड़ चले हैं।

पर मस्तिष्क भीतर उत्ताप से जल रहा है। फुहारों की शीतलता और समीर के झकोरे शरीर कम्पायमान करके भी मस्तिष्क को छू नहीं पाते—वहाँ वही आग और उस आग को धधका देनेवाली वही आँधी!

और इस आँधी में व्यग्र मनोभाव न जाने कहाँ उड़ते जा रहे हैं। मैं सोचता हूँ प्रभाशङ्कर कि तुम मेरी इन भावनाओं को

अगर जान पाते तो कभी भी तुम्हें मेरे केसर से न मिलने पर आश्चर्य न होता। और अब ? अब तो मिलना एकदम असम्भव है ! सोचता हूँ कि इधर पत्र-व्यवहार करना ही एक भूल थी। पहला निर्णय ही उचित और वही सत्य था। अपने पत्र व्यवहारों को प्रारम्भ करते हुए सोचा था कि मैंने भूल कर डाली है और उसका प्रायश्चित्त केसर को पुनः उसके पुराने आसन पर बैठा देने से ही होगा। पर यह सब भूल, सब छल, सब प्रवञ्चना निकली ! संसार में झुकना—किसी से भी—किसी भी परिस्थिति में झुकना—मेरे स्वभाव का अङ्ग नहीं है, और दुनिया जिस प्रकार की मनोवृत्ति से 'नम्रता' का नाम देती है, वह मुझे कभी भी आकर्षित नही कर सका। नम्रता मनुष्य के भीतर के एक स्थल की कमजोरी ही है, और कभी-कभी वह आकर्षक सिर्फ इसलिये मालूम होती है क्योंकि जिसके सामने नम्रता दिखायी जाती है उसकी भावनाओं की चाटुकारिता इससे हो जाती है। आदमी के अहम्भाव की परोक्ष रीति से यह प्रशंसा होती है।

लेकिन प्रभाशङ्कर, मैंने इस केसर के लिये क्या नहीं किया ? पर सब धोखा। क्या कहूँ, यह नारी जाति सचमुच संसार में क्या छलों और विश्वासघातों के लिये ही आयी है ?

मेरे इस पत्र का आवेश स्पष्ट है। जी, आवेश है, लेकिन

तुम मेरे इस सहसा भाव-परिवर्तन को न समझ सकोगे। कोई आवश्यकता भी नहीं है। शायद कभी समझ सको। कौन जाने? इस समय तो अब केवल यही स्पष्ट हो रहा है कि मेरा पुनर्मिलन असम्भव हो गया है। और आज इसकी सारी जिम्मेदारी मुझपर नहीं, केसर देवी पर ही है। समुद्र के दो किनारों से बीच की विशाल दूरी को पारकर हमलोग जिस केन्द्र विन्दु पर मिलने के लिये बढ़ रहे थे, उससे आज दूर हटकर पुनः अपनी-अपनी जगह लौट आये हैं—जहाँ से चले थे!

आज! हमारे बीच की लहराती हुई लहरों की ऐसीदीवाल!! हमलोग अब एक दूसरे से कभी मिल न सकेंगे—कभी नहीं, घटनाओं ने अपने आप भाग्य फैसला कर दिया प्रभाशङ्कर।

पर अपना दुर्भाग्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता और उलझनें ज्यों की त्यों बढ़ी हुई हैं, केवल उनका रूप बदल गया है। अपनी मानसिक स्थिति, क्या कहूँ मैं इस समय!

इस समय बस इतना ही। तुम्हारी व्यग्रता को मैं समझ रहा हूँ और मुझे दुख है कि मैं नाहक तुम्हे इन उलझनों के बीच डालकर परेशान कर रहा हूँ।

जी, विनोदिनी देवी को तुम निमन्त्रित कर सकते हो, पर

आगरा

मेरे तुनुक मिजाज राजा,

बस इतना ही ? अभी भी किसी के दुर्भाग्य के साथ खेल खेलने से तृप्ति न हुई हो तो अभी और भी खेल सकते हो ! किसी के दुर्दिन पर व्यंग्य और क्रूर हँसी, किसी के फूटे भाग्य पर तीखे ताने—इनका सुख ही निराला होता है और तुम्हारे जैसे भाग्यवान भी बहुत कम होंगे जो इसका उपभोग कर सकें। जितने अधिक साहस और जितनी अधिक 'सहृदयता' की आवश्यकता इन बातों का सुख लेने के लिये चाहिये उतनी सब में पायी नहीं जाती इसीलिये कहती हूँ कि इस विषय में भगवान ने तुम्हे खास तौर पर अपना वरदान देकर अभिषिक्त किया है और मेरे जैसे प्राणी का तुम्हे मिलना इसका सबसे बड़ा प्रमाण है ! कहाँ मिलता तुम्हे इतना अनोखा सुख अगर विधाता ने मेरी सृष्टि न कर डाली होती और साथ ही तुम्हारे लिये मुझे सुरक्षित न रख छोड़ा होता ! कितना बड़ा है तुम्हारा भाग्य और कितनी सौभाग्य शालिनी हूँ मैं कि इस रूप में भी मैं पति को सर्वथा सुख

पहुँचाने के हिन्दू ललनाओं के उच्चादर्श का पालन करती जा रही हूँ !!!

पर तुम तो अपनी मनोवृत्तियों पर नियन्त्रण करने का प्रयत्न कर रहे थे न मेरे मालिक ? लेकिन तुम फिर गिरे ! संयम की कीमत न दे सके तुम। नहीं दे सकते। इस बार यह मेरी नहीं तुम्हारी पराजय हुई है। मुझ हारी हुई को लाज क्या ? एक बार न सही, सौ बार ! परन्तु तुम ? जाने दो !

तो सन्देह की फिर वही अँधेरी रात ! यह तो दैव का विधान ही था कि मैं यहाँ फिर इन्हीं के पास आ पहुँची। मुझे क्या पता था कि आगरे में मै यहाँ जिनके पास ठहरी हुई हूँ वे वही सज्जन हैं जिनका चित्र मेरे साथ स्कूल के दिनो में था और जिसको लेकर हमारे जीवन के कथानक का इतना विराट और अद्भुत रूप हो गया। पर आज का सन्देह जितना मजबूत था उसका यह प्रमाण उससे भी मजबूत निकला। संसार में नारी-स्वाधीनता का डङ्का पीटने वाले मेरे प्राणनाथ के विचारों के अनुकूल ही उनका वह सन्देह भी था और उनका यह प्रमाण भी। ठीक ही तो है अगर इन महोदय से मेरा कोई सम्बन्ध न होता तो मैं अपनी तपस्या छोड़कर यहाँ क्यों चली आती ! आपके तर्क विजयी हुए ! और जीवन तथा जीवन के सत्य तर्क से कितने निम्न स्तर पर हैं !!

आप नहीं देख रहे है और इसलिए मेरी आँखों में इस

समय रह रह कर आँसू उमड़े आ रहे हैं। पिछले ६ सालों का इतिहास आँखों में घूम जाता है! पर इस इतिहास के सबसे काले पृष्ठ वे हैं जिन पर इधर पत्र व्यवहार के दिनों की कहानियाँ अङ्कित हैं! हमारे दाम्पत्य-जीवन के कथानक का अन्त अपने आप ऐसा हो गया था जो अस्वाभाविक न था, पर इधर आपने एक कमजोर कलाकार की भाँति जो मनमाने तौर पर इसका अन्त कर डालना चाहा वह........हाय! आप दूसरों के मनोभावों को सोचते ही नहीं!

पिछले दिनों की सारी तपस्या आप के चञ्चल आह्वानों ने भङ्ग कर डाली। आपकी पुकार पर यह मेरी पराजय थी, पर मेरी साधना का वह निर्दिष्ट पथ आज भी वैसाही उज्ज्वल एवं प्रशस्त बना हुआ है और इस प्रकाश के सहारे मैं आज भी उसी दिशा की ओर पैर बढ़ा सकती हूँ। यह वर्तमान आज पुनः उस अतीत को सजीव बना रहा है—वह अतीत, जिसके अन्तस्तल मे जीवन की सारी दारुण कहानियों की मर्म व्यथा आज भी रो रही है और वह अतीत जिसमे आपका मेरे चरित्र के प्रति भीषण सन्देह मेरे भाग्य का क्रूर उपहास किया करता है। आज इस वर्तमान में उसी अतीत की फिर एक आवृत्ति देख रही हूँ; किन्तु उसकी यह विभीषिका प्राणों को न तो इतनी विकल कर उठती है और न तो स्पन्दनों का ही प्रतिरोध करने की धमकी दे डालती है।

बल्कि तुम्हारी इस पराजय में तो, मेरे बादशाह, मैं अपनी भावनाओं की विजय देख रही हूँ। तुम्हारे पत्र-व्यवहार के दिनों में भी मैं रह रहकर सोचने लगती थी कि मेरे इस कङ्काल में क्या अब भी वह रस है जिसका मैं सौन्दर्य-देवता के चरणों पर अर्घ्य चढ़ा सकूँगी ? क्या अब भी इन त्वचाओं में कोमल आह्वानों का उत्तर देने की कुछ भी क्षमता रह गयी है ? बिल्कुल नूतन भावनाओं का बना दिया यह शरीर—जो उसी पुराने कङ्काल पर बना हुआ है और जो उन पुरानी भावनाओं का सब कुछ मिटाकर केवल उस कङ्काल को ही सत्य छोड़कर मरा है, वह क्या आज तुम्हारे मादक स्पर्श से क्षणभर को भी सजीव हो सकेगा ? एक ओर मेरे उसी पुराने अस्तित्व के लिये तुम्हारा आकुल आह्वान और दूसरी ओर अपनी यह दुनिया तथा इन दोनों के बीच का एक नूतन व्यवधान—इन सबका सामञ्जस्य कैसे हो सकेगा, मैं यह सोचती थी और आज मैं सोचती हूँ कि यह विचार अस्वाभाविक न थे। सचमुच कैसी होतीं वे घड़ियाँ जिनमें यह सब परस्पर विरोधी भाव और शक्तियाँ आपस में टकरा जातीं और जीवन इस दोनों ही के एक अनवरत द्वन्द्व में बीत जाते! उफ! कैसी होती वे घड़ियाँ!! और उधर सन्देहों, प्रायश्चित्तों एवं अविश्वासों की आँधी इन द्वन्द्वों को कितना भीषण बना देती !

पर महाप्रभु को धन्यवाद दो स्वामी कि उनका प्रकाश हमारे कर्तव्य-पथ को यों आलोकित कर उठा है ! कितना भयावह था हमारा प्रथम विच्छेद, पर उससे भी कितना अधिक भयावह होता हमारा यह पुनर्मिलन !

बस अब बहुत लिखने की आवश्यकता न रही । भगवान की कृपा का हाथ आप पर सदैव बना रहे, यही कामना है !

और इसी एक कामना के साथ,

सदैव आपकी ही,

केसर

आगरा

नीलम बहन,

मेरा भ्रम गलत निकला। वास्तव में चन्द्रशेखर रमला को लेकर आये। और उसे देखने से साफ जाहिर होता था कि आज चन्द्रशेखर ने उसमें दिलचस्पी ली थी। नये ढङ्ग से उसे सँवारा था और उसका रूप जैसे निखर उठा था। रमला यों भी खूब-सूरत बालिका है, आँखें तो ठीक तेरी जैसी हैं, जैसे बोल उठें। बड़ी बड़ी आँखें, एक दम तेरा ही जैसा सोने-सा रङ्ग और सारे शरीर को आच्छादित करने वाला संकोच ! बेचारी सिमटी पड़ती थी। भला इस चन्द्रशेखर को क्या कहूँ, इतने दिनों तक लोग कहते हैं इसने इसकी ओर ध्यान ही न दिया। बेचारी यों ही निरावलम्ब-सी हो रही। जरा भोली सी बालिका है रमला और आज भी उसका भोलापन उसके रङ्ग ढङ्ग से टपका पड़ता था। मैंने कहा न, उसकी सारी सजावट चन्द्रशेखर ने कर डाली थी। और रमला ने इसमें जैसे कोई भाग ही न लिया हो। मेरे घर पर दोनों पहुँचे तो रमला मारे संकोच के दबी जाती थी और उसकी

उस लज्जा-शीलता पर चन्द्रशेखर खिलखिला पड़ता था। केसर देवी आयीं तो उन्होंने रमला को बड़े दुलार से अपने पास बैठाया और उसे गौर से देखने लगीं। और अब रमला का भोलापन पकड़ा गया। बात यह है कि चन्द्रशेखर ने ही सजावट की थी और वह लड़का सब सजाकर भी भाल पर सुहाग की बिन्दी देने से भूल गया! केसर देवी ने देखते ही कहा 'चन्द्रशेखर बाबू, आप तो बड़े सावधान पति हैं!" और फिर रमला के भालपर देखने लगी। पर चन्द्रशेखर कुछ समझ न सका। उसने सहज लहजे से कह दिया—

"जी, इसका सर्टिफिकेट तो मुझे बहुत पहले से श्रीमती रमला देवी दे चुकी है!"

"क्यों न दे, तुमने इसे सुहाग की बिन्दी भी लगायी?"

"ओ आई सी" कहकर चन्द्रशेखर हँसने लगा, "अभी—अभी डबल बिन्दी लगाता हूँ केसर देवी! ठहरो रमला रानी!"

रमला सन्न-सी हो गयी थी। उसने जैसे निन्दात्मक क्रोध से चन्द्रशेखर की ओर देखा और तब तक क्षणभर में चन्द्रशेखर सचमुच सुहाग की डिब्बी लेकर आ पहुँचा और जाकर रमला के सामने बैठ गया।

रमला लजा उठी। उसने कहा, "रहने दो, तुमने सब किया, किन्तु......"

"तो अब करता हूँ।"

"चन्द्रशेखर बाबू आप बाहर जाइये" केसर देवी ने कहा।

"जो हुक्म," चन्द्रशेखर बाहर निकल गया और केसर देवी ने रमला के मस्तक पर सुहाग की बिन्दी लगायी।

चन्द्रशेखर आया तो हमारी बातें तुम्हारे विवाह को लेकर चल पड़ीं। चन्द्रशेखर ने कहा, "रमला पर मैं यहाँ कोई कटाक्ष नहीं कर रहा हूँ, परन्तु मैं सोचता हूँ कि विवाह जीवन में बहुत कड़ा बन्धन है और मनुष्य की कितनी ही शक्तियाँ इस बन्धन में पड़कर नष्ट हो जाती हैं। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि विवाह-बन्धन में पड़ जाने से कम-से-कम पुरुष के कितने ही गुणों का विकास रुक जाता है। हमारे जीवन का दृष्टिकोण बहुत ही संकीर्ण हो जाता है और हम......"

"और हमलोग अपनी पत्नियों से घृणा करने लगते हैं!" केसर देवी ने बीच ही में रोका। "रमला बहन ने क्या कभी आपको पढ़ने लिखने से रोका चन्द्रशेखर बाबू? आप के विचार भला ऐसे क्यों हुए? आप तो सदा से, सुना है, इस तरह रहते आये हैं, जैसे विवाहित आप होही नहीं। फिर..."

"फिर मैं शिकायत क्यों करता हूँ? आप जानती नहीं,

रमला के प्रति मेरी उपेक्षा की बात कह कहकर इस गाँव के लोगों ने जो आसमान सिर पर उठा लिया और इसका मुझपर जो मानसिक प्रभाव पड़ा उसकी हानि मैं ही जानता हूँ।"

"और रमला से लाभ आपको कुछ कभी हुआ ही नहीं? तू ने भला इनके जी को कभी हल्का क्यों न किया बहन?—केसर देवी ने कहा। लेकिन यह कितनी सरल बालिका है चन्द्रशेखर बाबू, आप जब तक इससे कुछ न कहें, बेचारी स्वयं नहीं जानती इसे क्या करना चाहिये।"

"सरला, ओह!" चन्द्रशेखर हँसा, उसने कहा "तो आप आप जानती नहीं। मैं तो इससे तर्कशास्त्र सीख रहा हूँ। मुझे तर्क में हरा देने पर ही श्रीमती रमला देवी यहाँ आ सकी हैं, आप पर बाज़ः रहे। आपको मालूम है? एक बार मैंने बनारस से इनके लिये चूड़ियाँ भेजी थीं। चूड़ीवाली हमारे मकान के भीतर आयी तो मकान से बिना चूड़ी बेचे निकले ही नहीं। बहुतेरा समझाया कि मुझे चूड़ियों की जरूरत नहीं, कहा अनाथ हूँ, घर में कोई नहीं और अनाथों को भला बीबी कोई क्यों देने लगा? पर वह जिद्दी छोकरी मानी ही नहीं, "जरूर होगी बीबी आपकी," कहने लगी—"राजा बाबू जैसा चेहरा, और बनते है अनाथ! अरे मैं सब-जानती हूँ बाबू, तुमलोग अपनी औरतों से न जाने क्या जहर खाये हुए रहते हो कि उनके नाम पर तुम्हें

गुस्सा आ जाता है और चाहे पलँग पर लेटे-लेटे किसी खूबसूरत फिल्मवाली की तस्वीर सारी रात देखते रह जाओ! लेकिन हाँ, बड़ी किस्मतवाली होगी तुम्हारी बीबी जो तुम्हारा जैसा शौहर मिला है बाबू। किसी मेम से किया है शादी?" "नहीं, मेम तो नहीं मिली, मैंने कहा, 'इसलिये एक मेमनी से ही कर डाली। मेम से बिल्कुल उल्टा स्वभाव है उस मेमनी का। ठीक वैसी ही भोली-भाली, न ऊधो का लेना, न माधो का देना।" लेकिन चूड़ी-वाली समझी कुछ भी नहीं, उसने कहा "तो क्या आप से लड़ाई करेगी बाबू, अरे मर्द को खुश रखकर ही औरत को चलना पड़ता है, खुश रहोगे तो एक की जगह तीन-तीन साड़ियाँ दोगे और काँच की जगह सोने की चूड़ियाँ पहनाओगे, नहीं तो लात मारकर घर से निकाल दो।" आखिरकार मैं चूड़ी लेने पर विवश हो गया और मनमें सोचा कि चूड़ीवाली अच्छा बेवकूफ बना गयी। लेकिन क्या करता, खरीदनी पड़ी और फिर एक चिट्ठी के साथ उपहार बनाकर तत्काल रवाना किया श्रीमती रमला देवी के पास। लेकिन सुना है श्रीमती जी रोने लगी थीं उन्हें देखकर, पता नहीं मुहब्बत ने इतना जोर एक साथ ही क्यों लगा दिया!"

चन्द्रशेखर एक लहजे में कह गया और उसके बन्द होते ही मला ने कहा "यही इनका उपहास मुझे नहीं सुहाता बहन

जी।" रमला ने धीरे से केसर से कहा कि केसर ने तत्काल जवाब दिया, "ऐसी बातों पर नहीं बिगड़ते बहन, यह सब आपस की दिलग्गी है और जिन्दगी की मिठास के लिये यह सब बातें भी जरूरी हैं।"

चन्द्रशेखर गुरुदेव के पास चला गया, पता चला कि वे अबला आश्रम के कार्यों से छुट्टी पाकर आ गये। हम सब सजग हो गयीं। मैं उठने लगी कि केसर देवी ने रमला की ठोड़ी ऊपर उठाकर कहा, "देख, दाम्पत्य-जीवन में पति-पत्नी दोनों को तरह देकर चलना पड़ता है, अनेक झगड़े जिनका अन्त प्यार के एक चुम्बन से हो जाना चाहिये, कभी-कभी नादानी से समस्त जीवन नष्ट कर डालते हैं।"

इस तरह बातें हो ही रही थी कि मैं उनसे मिलने चली गयी, उन्हे आया जान रमला और चन्द्रशेखर भी जाने लगे, पर जब उन्होंने सुना कि वे दोनों एक साथ ही आज इस घर में आये हैं तो बड़े प्रसन्न हुए और चन्द्रशेखर को बुलाकर कहने लगे "धरती पर चाँद और सूरज एक ही समय और एक ही साथ! आश्चर्य तो जरूर हो रहा है पर आनन्द भी कम नहीं हो रहा है। मालूम होता है, आखिर तुमने रमला के सामने अपनी पराजय स्वीकार की है, और भाई चन्द्रशेखर, अपनों से हार मानने में कभी भी हानि नहीं उठानी पड़ती। आज तुम दोनों

यहीं खाना पीना करो न।"

"मुझे तो मन्जूर है भाई साहब, मगर···"

"और रमला को केसर देवी मना लेंगी चन्द्रशेखर।"

"केसर देवी?" उन्होंने पूछा, "यह केसर कौन हैं?"

"पृथ्वी पर की तपस्विनी रति!" मैंने कहा।

"सिर्फ रति ही रति या कामदेव भी?"

"तपस्विनी रति मैंने कहा है"। मैंने उत्तर दिया।

"किन्तु कामदेव महाराज कहाँ अकेले-अकेले अलख जगा रहे हैं? क्या शिव-पार्वती-विवाह की पुनरावृत्ति एक बार इस कलियुग में होनेवाली है?"

"तुम तो दिल्लगी करते हो?" मैंने कहा।

"तो फिर तुम साफ साफ क्यों नहीं कहतीं कि आखिर यह केसर देवी है कौन?"

"अभी जान जाओगे। गुरुदेव के साथ आयी···"

"तो यों क्यो नहीं कहतीं? पहेली-बुझौवल खेलने के दिन तो अब चले गये चम्पा रानी!" वे मुसकिराने लगे और मैं कमरे के भीतर चली गयी।

तो नीलम बहन, इस पत्र को मैं यहीं समाप्त करती हूँ। पर इसे अभी भेजूँगी नही, अभी बहुत सी बातें लिखनी हैं।

तुम्हारे विवाह की उन्हें खबर अभी नहीं है। उनकी सलाह भी लिखूँगी। प्राणनाथ जी का फोटो भी उन्हें दिखाऊँगी।

बस, इस समय इतना ही। रमला और चन्द्रशेखर भी यहीं हैं। हम सब आज एक साथ ही खाना खायँगे। काश! तू भी होती, तुम्हारे नाम पर दो नेवाले मुझे ही खाने पड़ेंगे। एक तेरे लिये और एक तू जिसके लिये यहाँ रहने पर खाती, उसके लिये।

प्यार के साथ,

तेरी

'चम्पा रानी'

आगरा,

दूसरा दिन

अरी नीला बहन,

रहस्य खुल गये, एक साथ ही कई रहस्य ! मेरे ड्राइङ्ग रूम का वह चित्र जो मेरे पति के साथ किसी युवती का है, और जिनको लेकर हमलोगों ने कितनी ही आलोचना प्रत्यालोचना की थी, वह इन्हीं केसर देवी का है !! जी, चौंको मत, इन्हीं केसर देवी का; और पतिदेव ठीक कहा करते थे कि यह चित्र उस समय लिया गया था जिस समय केसर और वे एक साथ ही पढ़ते थे। नाटक खेलने के बाद उसी लिबास का फोटो। और यह प्राणनाथ जी ? अजी, उनका भी रहस्य खुल गया। वे इन केसर देवी के पति हैं ! तुम्हारे भेजे हुए फोटो को केसर देवी ने पहचाना है !!!

केसर देवी विकल हो उठी हैं। मेरा कलेजा अनेक भावी आशङ्काओं से काँप रहा है और गुरुदेव केसर देवी को लेकर आज ही अपने आश्रम को लौट जायँगे। रमला, चन्द्रशेखर,

किसी ने कुछ भी खाया नहीं। हम सब लोगों को खाने के पहले ही बातचीत के सिलसिले में यह सब मालूम हो गया। इस समय विकल हो रही हूँ।

तुम्हारी,

चम्पा

आगरा,
दूसरे दिन की
वही सन्ध्या

नीलम,

केसर देवी चली गयीं। गुरुदेव आश्रम में उन्हें लेकर लौट गये। पतिदेव चिन्ताकुल हो रहे हैं। इसी चित्र को लेकर प्राणनाथ जी ने केसर देवी को त्याग दिया है। पतिदेव कहते हैं यह प्राणनाथ का घोर अन्याय है। केसर का चरित्र सन्देह से परे है। और वे तो प्राणनाथ के साथ तुम्हारे विवाह के भी विरोधी हैं।

आह! कहानी का यह अन्त! कौन जानता था···नीला, नीला, तू घबड़ा न बहन!

सदा की भाँति ही अब भी तेरी

—चम्पा

दिल्ली

प्यारी चम्पा वहन,

हो चुका, जो होना था, हो चुका। उनके साथ अब मेरा विवाह रुक नहीं सकता। दुनिया जान गयी है इस सम्बन्ध की बात और अब मेरे माता पिता पीछे हटना नहीं चाहते। राज्यश्री रोने लगी और वह विवाह के पक्ष में नहीं है। पर पिता जो जहाँ पहले इतने विरोधी थे, वहाँ अब वही इसके पक्ष में हो गये हैं। और मैंने तो जब उन्हें चुन लिया तब अब मैं पीछे न हटूँगी। कई दिन पहले वे यहाँ आये थे और बहुत ही विचलित दिखाई पड़ते थे। उनका स्वास्थ्य भी कुछ कैसा-सा हो चला है। कुछ मानसिक वेदनाएँ जैसे उनमें हैं।

और मेरा विवाह तो हो चुका—महाप्रभु की छाया के नीचे। उस रात में जिस दिन हमने एक दूसरे को अपनाने के सम्बन्ध में बातें कर लीं, वह अन्तिम निर्णय था। तुम मेरी निर्लज्जता पर क्रोधित हुई थीं चम्पा बीबी, पर जिसे तुमने "अभिनेत्रों की भाँति पराये पुरुष के अङ्कों में···" कहा था,

वह परायेपन की भावना न थी। उनके साथ मैं प्रसन्न रहूँ या न रहूँ, पर दूसरे किसी भी पुरुष की छाया को भी अब मैं छू नहीं सकती। नारी आत्म-समर्पण केवल एक ही बार करती है और वह हो चुका!

विशेष क्या लिखूँगी? जीवन के ये प्रारम्भिक अध्याय भी दुख से खाली न रह सके!......

राज्यश्री तुम्हें नमस्कार कर रही है।

तुम्हारी ही,

नीलम

दिल्ली

वही दिन

चम्पा बीबी,

केसर देवी गयीं कहाँ ? पता लिख सकोगी ? वे तो मेरे विवाह में सम्मिलित होकर मुझे आशीर्वाद देनेवाली थीं न ?

काश ! उनसे एक बात कर पाती !!

—नीलम कुमारी

पटना

आदरणीय महोदय,

आपके कृपा पत्र के लिये धन्यवाद! क्या आप तिथियों को दस-पाँच दिन टाल नहीं सकते? मैं जानता हूँ कि इससे आपके विलायत जानेवाले प्रोग्राम में काफी हेर-फेर हो जायगा, पर मैं जरा कई अड़चनों से बच जाता, यों आपकी जैसी मर्जी!

आपका सेवक,

प्राणनाथ

पटना

भाई प्रभाशङ्कर जी,

राय साहब शादी की तिथियों में परिवर्तन नहीं कर सके, क्योंकि वे विलायत जाकर स्वास्थ्य-सुधारने के लिये सब प्रबन्ध कर चुके हैं। वे कोई धूम-धाम भी नहीं करेंगे, न जाने क्यों उनका सारा उत्साह अकस्मात जाता रहा है और वे किसी तरह शादी की रस्म पूरी करके 'छुट्टी' पा जाना चाहते हैं।

आप कृपया उस अवसर पर विनोदिनी बहन को लेकर उपस्थित हो सकेंगे न?

कृतज्ञतापूर्वक,

आपका,

प्राणनाथ

दिल्ली

प्यारी चम्पा बहन,

आज विवाह की अन्तिम विधि सम्पन्न कर दी गयी। पिता जी को सारी बातों का पता चल गया और वे अन्त तक निरुत्साहित ही रहे। उनके सम्बन्ध में उनकी धारणाएँ अच्छी न बनी रह सकीं। तुम्हें सूचित भी न कर सकी। क्षमा करना, किसी को पता तक नहीं चला। कालेज की कुछ सहेलियाँ आ गयी थीं और विनोदिनी भी प्रभा बाबू को लेकर आ गयी थी। उन्होंने ही पत्र लिख दिया था! पिता जी ने तो किसी को भी बाहर से बुलाने की मनाही कर दी थी।

जिस तरह धीरे से छिपे-छिपे इस प्रेम का प्रारम्भ हुआ था उसी प्रकार विवाह भी चुपके से हो गया। पर मैं महसूस करती हूँ कि कौन-सा प्राणी है जिसके भीतर एक हाहाकार न था? विनोदिनी ने भी विवाह पर अपनी स्वीकृति नहीं दी थी।

इस समय तुम्हारे आशीर्वाद की कामना करती हूँ। उनके चरणों में गुस्ताखी के लिये क्षमा चाहती हूँ। पैर जितनी दूर

तक बढ़ गये थे चम्पा बीबी, वहाँ से लौटना असम्भव था।

पर भगवान के मङ्गलमय आशीर्वाद से सब कुशल होगा। आखिरकार केसर बहन ने ही इतनी जल्दबाजी क्यों की? लड़ाई-झगड़े किससे नहीं होते, फिर उन्होंने इतना अद्भुत काम क्यों कर डाला? मैं मानती हूँ कि उनमें जरा तेजी जरूर है और वे झुकना नहीं जानते, पर नारी ही अगर जरा झुककर चले तो उसकी कौन हेठी हो जायगी?

मैं अनेक विचारो मे उलझ अवश्य उठी हूँ, पर हमारे स्वप्न महाप्रभु की कोमल छाया के नीचे पल्लवित होंगे चम्पा, मैं निराश क्यों होऊँ? दुनिया के लिये वे बुरे ही हों, पर मैं दुनिया की परवाह ही क्यों करूँ?

आशीर्वाद की भूखी,

तुम्हारी अपनी,

नीलम

एस० एस० विक्टोरिया,
सागर का वक्षस्थल
रात का दूसरा पहर

प्रिय चम्पा बहन,

रात का दूसरा पहर, यात्री सो रहे हैं और समुद्र की मत-वाली तूफानी लहरें कभी आपस में संघर्ष कर एक घोष में विलीन हो जाती हैं और कभी हमारे जहाज से टकराकर एक हाहाकार उत्पन्न कर देती हैं। ऊपर आकाश चाँदी का चँदोआ ताने सागर का यह हाहाकार चुपचाप सुन रहा है। अनन्त दूर तक—जहाँतक आँखें पहुँच पाती हैं केवल श्वेत सागर ही लहरा रहा है, पर आँखों से काफी दूर सागर-जल जमे हुए श्वेत शीशे के समान दिखायी पड़ता है लेकिन जहाज उसे भी चीरता हुआ, सागर का वक्षस्थल विदीर्ण करता हुआ आगे निकल जायगा और चञ्चल लहरियाँ बढ़कर फटा हुआ अञ्चल जैसे आतुरता से सी डालेंगी! जब से जहाज चला है, यही क्रिया देखती आ रही हूँ! वे आराम कुर्सी पर पड़े पड़े सिगरेट पर सिगरेट

पीते जा रहे हैं और जिस धीमे ढङ्ग से वे उसकी जली हुई राख झाड़ने लगते हैं, उसमें एक सूचना होती है कि विचार उनके कहीं और उलझे हुए हैं। अभी कई सेकेण्ड तक उनकी उँग-लियाँ राख झड़ जानेपर भी सिगरेट को धीमा-धीमा चोट देती रही हैं। और अकस्मात् जैसे किसी चेतना के आ जाने से वे उठे और बार की रेलिङ्ग पकड़ कर समुद्र पर झाँकने लगे!

इस समय भी वे इसी तन्मयता में डूबे हुए हैं और आज जहाज पर तीसरा दिन है। पर इन तीन दिनों की रातें इसी प्रकार बीती हैं। दिन में तो माँ और राज्यश्री उन्हें बहलाये रहते हैं, किन्तु रात में मैं उनके मनोभावों को फेर नहीं पाती। एक व्यथा है जो उनकी आँखों में करुणा जगाये रखती है और कभी किसी बात पर मुसकिराते हैं तो विषाद की रेखा होठों पर खिंच उठती है!

और यह मनोभाव है जो उन्हें जितना ही तन्मयता में डुबाये हुए हैं, उतना ही मुझे चञ्चल बना डालते हैं। मेरे सुखों के लिये वे किसी बात को उठा नहीं रखते। पर कलसे उनके मनोभाव और भी खराब हो चले हैं। कल केसर बहन का एक पत्र दिल्ली के पते से रिडाइरेक्ट होकर बम्बई आया और वहाँ से थामस कुक एण्ड को० की मार्फत जहाज पर मिला! पत्र पढ़ा तो वे विचारों में उलझ उठे! चिन्तित तो पहले से ही हैं,

पर कल से, जबसे पत्र मिला है, वे और भी विचलित हो उठे हैं। केसर बहन ने अपना पत्र समाप्त करते हुए लिखा है—

"......और जीवन की धाराएँ जिस रूप में बहती गई हैं, उनका यही अन्त स्वाभाविक भी था देवता, भगवान तुम्हें सन्तुष्ट और सुखी रखें और बहन नीलम, तेरे भाग्य की रेखा युग-युग तक अचल एवं अमर बनी रहे !"

"......अभागिनी केसर का यह जीवन-प्रदीप अब भी जल रहा है और उसकी टिमटिमाहट के धूमिल प्रकाश में उसका जीवन-कङ्काल अपने अलस प्राण-स्पन्दनों से सजीव काल-प्रवाह में बहता चला जा रहा है—अब भी खट खट—खट खट !!!"

पढ़ते ही वे व्यग्र हो उठे और मैं उनके मुँह की ओर देखती ही रही कि उनकी आँखों में आँसू छलछला उठे !

"देवता !" मैं विचलित हो उठी।

"नीलम !" एक उलझा हुआ स्वर, एक निरुपाय दृष्टि !

"हमलोग शीघ्रही यहाँ से घूमकर वापस चलेंगे और—"

"और केसर रानी को खोज निकालेंगे !—काश ! ऐसा होता नीलम, पर अब तो वे..."

"कहते क्या हो स्वामी ? ऐसी निराशा......"

"अब तो यह निराशा सारे जीवन की संगिनी बन गयी रानी, केसर देवी की याद......"

"पवित्र है उनकी याद स्वामी और मङ्गल-दायिनी भी ! हमलोग शीघ्र ही लौटेंगे, और तब···"

"तब तक क्या वे !" वे बोले, लेकिन जैसे गला रुँधा और उठकर चले गये !

यह कल की घटना है। पर देवता आज भी कृपालु नहीं हो सके हैं और उनके मनोभावों में कुछ भी परिवर्तन नहीं आया है और बहन केसर को लेकर ही वे उलझ उठे हैं। दुनिया जो समझे पर वे—हाय! वे केसर देवी को कितना प्यार करते हैं! मैं जितना ही उन्हें प्यार करती चलती हूँ, उतना ही केसर देवी की याद उन्हें विकल करने लगती है।

और यह विवाह ? मैं एक आशङ्का से रह रह कर आकुल हो उठती हूँ। सभी सुखों से घिरी हुई हूँ। पर उनके मनोभाव ! हाय ! "दिन नहिं चैन, रात नहिं निदिया" भाग्य की रेखाओं में क्या लिखा है चम्पा बीबी, ऐसे सुन्दर प्रारम्भ का ऐसा······ !!

अभी उन्होने पुकारा "सो रहो नीलम ! रात काफी बीत चुकी है, लेकिन·····" "लेकिन क्या स्वामी ?" मैं बोली ! मैंने लिखना बन्द कर दिया था !

"दूर, कहीं, तूफान नजर आता है ! और यात्री......"

"दूर—कहीं तूफान ??"

"लहरें तो हहरा रही हैं! सुनती नहीं हो रानी!" वे बोले।

"कोई असाधारण हहराहट ? हम लोग इस समय कहाँ होंगे ? समुद्र के अतल वक्षस्थल पर ??"

"तूफ़ान ! नीलम रानी, तूफ़ान !!!"

"स्वामी ?"

और सावधानी का यह घण्टा—अलार्म बेल ! यात्री जाग उठे हैं, तूफान लहराता बढ़ रहा है, समुद्र का ऐसा घोष !! एक 'थ्रिल' आवाज ! न जाने कैसी !!

और उनकी भुजाएँ मुझे बाँध लेने के लिये मेरी ओर बढ़ रही हैं !

"नीलम ?"

"स्वामी ?"

"नीलम ??"